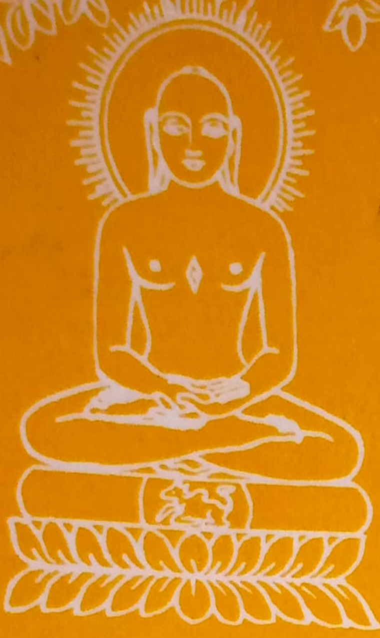
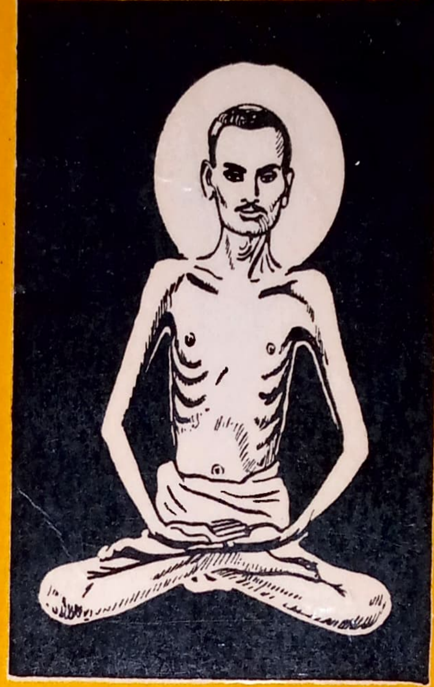






श्री

भक्ति-कर्तव्य



M S RAO.

श्रीमद् राजचन्द्र एवं युगप्रधान श्री सहजानन्दघनजी प्रणीत

श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम (रत्नकूट, हम्पी) प्रकाशन

॥ ॐ नमः ॥

श्रीमद् राजचंद्रजी एवं यो. यु. श्री सहजानंदघनजी प्रणीत

27-1-2018

श्री

भक्ति कर्त्तव्य

(लालाजी श्री रणजीतसिंह जी कृत वृहत् आलोचना से युक्त)

प्रेरक :

पू. आत्मज्ञा माताजी श्री धनदेवीजी

सम्पादक :

प्रा. प्रतापकुमार ज. टोलिया

एम. ए. (हिन्दी); एम. ए. (अंग्रेजी), साहित्यरत्न

प्रकाशक :

श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम

रत्नकूट, हम्पी–५८३२१५

पो. कमलापुरम, वाया : रे. स्टे. होस्पेट

जिला : बेल्लारी, कर्नाटक (मैसूर)

मूल लेखक :	श्रीमद् राजचन्द्रजी एवं यो. यु. सहजानन्दघनजी
सम्पादक :	प्रा. प्रतापकुमार ज. टोलिया
सह-सम्पादक :	श्रीमती सुमित्रा प्र. टोलिया श्रीमती चन्दनाबहन
प्रकाशक :	श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, हम्पी पो. कमलापुरम् (जि. बेल्लारी)
मुद्रक :	चॉइस प्रिन्टर्स किलारी रोड, बेंगलोर-५३
प्रतियां :	२५००
संस्करण :	द्वितीय
वर्ष :	१९८३
मूल्य :	रु. ३-५०, डाक व्यय ०-५०

अनुक्रम

नित्य कर्त्तव्य

"यदि तू संसार समागम में स्वतंत्र हो तो तेरे आज के दिन के निम्नानुसार विभाग कर-

१ प्रहर भक्तिकर्त्तव्य

१ प्रहर धर्मकर्त्तव्य

१ प्रहर आहार प्रयोजन

१ प्रहर विद्या प्रयोजन

२ प्रहर निद्रा

२ प्रहर संसार प्रयोजन ......।"

"प्रशस्त पुरुष की भक्ति करें, उसका स्मरण करें, गुणचिंतन करें।"

भक्ति क्यों?

आश्रय भक्तिमार्ग

"सर्व विभाव से उदासीन एवं अत्यंत शुद्ध निज पर्याय की आत्मा सहजरूप से उपासना करे उसे श्री जिन ने तीव्र ज्ञानदशा कही है। उस दशा की संप्राप्ति के बिना कोई भी जीव बंधनमुक्त नहीं हो

सकता, इस प्रकार के सिद्धांत का श्री जिन ने प्रतिपादन किया है, जो अखंड सत्य है।"

"किसी (विरले) जीव से ही उस गहन दशा का विचार हो सकने योग्य है, क्यों कि इस जीव ने अनादि से अत्यंत अज्ञान दशा से प्रवृत्ति की है, वह प्रवृत्ति एकदम असत्य, असार समझी जाकर, उसकी निवृत्ति (त्याग) सूझे इस प्रकार बनना अत्यन्त कठिन है। इसलिए जिन ने ज्ञानीपुरुष का आश्रय करने रूप भक्तिमार्ग का निरुपण किया है कि जिस मार्ग की आराधना करने से सुलभ रूप से ज्ञानदशा उत्पन्न होती है।"

"ज्ञानीपुरुष के चरणों के प्रति मन को स्थापित किए बिना वह भक्ति मार्ग सिद्ध नहीं होता, जिससे पुनः पुनः ज्ञानी की आज्ञा की आराधना करने का जिनागम में स्थान स्थान पर कथन किया है। ज्ञानी-पुरुष के चरण में मन का स्थापन होना, प्रथम कठिन पड़ता है, परन्तु वचन की अपूर्वता से उस वचन का विचार करने से एवं ज्ञानी के प्रति अपूर्व दृष्टि से देखने से मन का स्थापन होना सुलभ बनता है।"

सत्पुरुष की आश्रयभक्ति

"सत्पुरुष के वचन के यथार्थ ग्रहण के बिना विचार प्रायः उद्भव नहीं होता और सत्पुरुष के वचन का

विकल्प, स्वच्छंदता, अतिपरिणामीपन, इत्यादि कारण बारंबार जीव को उस मार्ग पर पतन के हेतु बनते हैं या ऊर्ध्वभूमिका प्राप्त नहीं होने देते।

क्रियामार्ग में असद्अभिमान, व्यवहाराग्रह, सिद्धि-मोह, पूजासत्कारादि योग और दैहिकक्रिया में आत्म-निष्ठादि दोषों का सम्भव रहा है।

"इन्हीं कारणों से किसी एक महात्मा को छोड़ते हुए अनेक विचारवान जीवों ने भक्तिमार्ग का आश्रय लिया है और आज्ञाधीनपन या परमपुरुष सद्गुरु के प्रति सर्वार्पण स्वाधीनपन शिरसावंद्य देखा है और वैसे ही वरते हैं तथापि वैसा योग प्राप्त होना चाहिए; वरन् जिसका एक समय चिंतामणि जैसा है वैसा मनुष्यदेह उल्टे परिभ्रमणवृद्धि का हेतु बन जावेगा।"

"उस आत्मज्ञान को प्रायः दुर्गम्य देखकर निष्कारण करुणाशील ऐसे उन सत्पुरुषों ने भक्तिमार्ग प्रकाशित किया है जो सभी अशरण को निश्चल शरणरूप है और सुगम है।"

पराभक्ति

"परमात्मा और आत्मा का एक रूप हो जाना(!) वह पराभक्ति की अंतिम सीमा है। एक वही लय

परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचन्द्रजी



देहजन्म [illegible]णिया (सौराष्ट्र) देहविलय : राजकोट

संवत् १[illegible]र्तिक सु १५ संवत् १९५७, चैत्र वद ५

रहना सो पराभक्ति है। परम महात्म्या गोपांगनाएं महात्मा वासुदेव की भक्ति में उसी प्रकार से रहीं थी। परमात्मा को निरजन और निर्देहरूप से चिंतन करने पर जीव को उस लय का प्राप्त होना विकट है, इसलिए जिसे परमात्मा का साक्षात्कार हुआ है ऐसा देहधारी परमात्मा उस पराभक्ति का परम कारण है। उस ज्ञानीपुरुष के सर्व चरित्र में ऐक्यभाव का लक्ष्य होने से उसके हृदय में विराजमान परमात्मा का ऐक्यभाव होता है और वही पराभक्ति है। ज्ञानीपुरुष और परमात्मा में दूरी ही नहीं है, और जो कोई दूरी मानता है, उसे मार्ग की प्राप्ति परम विकट है। ज्ञानी तो परमात्मा ही है और उसकी पहचान के बिना, परमात्मा की प्राप्ति हुई नहीं है, इस लिए ऐसा शास्त्रलक्ष है कि सर्व प्रकार से भक्ति करने योग्य ऐसी ज्ञानीरूप परमात्मा की देहधारी दिव्य मूर्ति की नमस्कारादि भक्ति से लेकर पराभक्ति के अंत तक एक लय से आराधना करना। ज्ञानीपुरुष के प्रति जीव की इस प्रकार की बुद्धि होने से कि परमात्मा इस देह धारी के रूप में हुआ है, भक्ति ऊगती है और वह भक्ति क्रम से पराभक्ति रूप होती है। इस संबन्ध में श्रीमद् भागवत में, भगवद्-गीता में बहुत से भेद प्रकाशित कर वही लक्ष्य प्रशंसित

किया है। अधिक क्या कहें? ज्ञानी तीर्थंकरदेव में लक्ष होने जैन में भी पंचपरमेष्टि मंत्र में 'नमो अरिहंताणं' पद के बाद सिद्ध को नमस्कार किया है वही भक्ति के लिए यह सूचित करता है कि प्रथम ज्ञानीपुरुष की भक्ति और वही परमात्मा की प्राप्ति और भक्ति का निदान है।"

भक्ति माहात्म्य

"भक्ति, प्रेमरूप के बिना ज्ञान शून्य ही है। तो फिर उसे प्राप्त करके क्या करना है? जो रुका सो योग्यता के कच्चेपन के कारण और ज्ञानी से भी अधिक प्रेम ज्ञान में रखते हैं उस कारण। ज्ञानी के पास ज्ञान चाहें उससे अधिक बोधस्वरूप समझ कर भक्ति चाहें यह परम फल है। अधिक क्या कहें?"

श्रीमद् राजचन्द्र

('तत्त्व विज्ञान' : गुजराती से अनूदित)

सहजानन्द-वाणी :

भक्ति-शक्ति

"भक्ति में अनंत शक्ति है .... ।"

"आपके हृदयमंदिर में यदि परमकृपालु-देव की प्रशमरसनिमग्न अमृतमयी मुद्रा प्रकट हुई हो तो उसे वहीं स्थिर करनी चाहिए । अपने ही चैतन्य का उसी प्रकार से परिणमन-यही साकार उपासना श्रेणी का साध्यबिंदु है और वही सत्यसुधा कहा जाता है। हृदय-मंदिर से सहस्त्रदल-कमल में उसकी प्रतिष्ठा करके उसमें ही लक्ष्य-वेधी धनुष की भांति चित्तवृत्ति-प्रवाह का अनुसंधान टिकाये रखना वही **पराभक्ति** अथवा **प्रेमलक्षणाभक्ति** कही जाती है । उपर्युक्त अनुसंधान को ही **शरण** कहते हैं । शर=तीर । शरणबल से स्मरणबल टिकता है । कार्यकारण के न्याय से शरण और स्मरण की अखंडता सिद्ध होने पर, आत्मप्रदेश में सर्वांग चैतन्य-चांदनी फैलकर सर्वांग आत्मदर्शन और देहदर्शन भिन्न-भिन्न रूप में दृष्टिगत होता है और आत्मा में परमात्मा की तस्वीर विलीन हो जाती है ।"

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]



जाता है, जिससे वैसे साधक को भक्ति-ज्ञान शून्य केवल योग-साधना करना आवश्यक नहीं है। दृष्टि, विचार और आचरण शुद्धि का नाम ही भक्ति, ज्ञान और योग है और उसी परिणमन से "सम्यग् दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्ग :" है। पराभक्ति के बिना ज्ञान और आचरण विशुद्ध रखना दुर्लभ है, इसी बात का दृष्टांत आ. र. प्रस्तुत कर रहे हैं न? अतएव आप धन्य हैं, क्यों कि निजचैतन्य दर्पण में परम कृपालु की तस्वीर अंकित कर सके हैं, ॐ"

प्रभु-स्मरण-बल

"श्री चंदुभाई के लिए विपरीत परिस्थिति में समरस रहने का बल मांगा यह निष्काम भावना अभिनंदनीय है–आत्मार्थी का वही कर्त्तव्य है। सतत प्रभुस्मरण की यदि आदत डाली जाय तो अदृश्य शक्ति के द्वारा अनुपम बल मिलता ही है– इस प्रकार की प्रतीति इस आत्मा को बरतती है; इसलिए भाई को इस दिशा की ओर अंगुलि निर्देश करें। यह आत्मा परमकृपालु के प्रति अंतरंग प्रार्थना करती है कि आप सब में उक्त आत्मबल विकसित हो और परिस्थितियों के प्रभाव से आत्मा का बचाव हो ... ॐ"

(वैयक्तिक पत्रों से)

श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम की अधिष्ठात्री
पूज्या माताजी के

"भक्ति-कर्त्तव्य" को मंगल आशीर्वच

"भक्ति करवी ए आत्मा नो स्वाभाविक स्वभाव छे. भक्ति करतां रावणे अष्टापद पर तीर्थंकर नाम गोत्र बांध्युं छे ए सौ जाणीए छीए, छतां आपणे भक्ति करतां केम अटकीए छीऐ ?.... भक्ति मोटी वस्तु छे. तेनाथी मोक्षनां द्वार जोवाय छे!

लि. माताजी ना आशीर्वाद"

(हिन्दी अनुवाद)

"भक्ति करना यह आत्मा का स्वाभाविक स्वभाव है। भक्ति करते हुए रावण ने अष्टापद पर तीर्थंकर नाम गोत्र बांधा है यह सब जानते हैं, फिर भी हम भक्ति करने से क्यों रुकते हैं ? .. भक्ति बड़ी चीज है। उससे मोक्ष-द्वार के दर्शन होते हैं!

—माताजी के आशीर्वाद"

सम्पादकीय

परम पवित्र सत्पुरुषों के करुणापूर्ण अनुग्रह से यह 'भक्ति कर्त्तव्य' आज कुछ अंशों में चरितार्थ हो रहा है, स्वतंत्र पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो रहा है। भक्ति की महिमा अनेक महापुरुषों ने गाई है। इस परंपरा में श्रीमद् राजचंद्रजी एवं योगीन्द्र युगप्रधान श्री. सहजानन्दघनजी ने न केवल भक्ति की महिमा ही गाई, किन्तु उसका उन्होंने जीवन में स्वयं अनुभव किया और जीवन की समग्रता की साधना में, आत्मदर्शन-आत्मानुसंधान की आराधना में, "ज्ञान-दर्शन-चरित्र" के रत्नत्रयी साधनापथ में उसका सूक्ष्म विवेक-युक्त स्पष्ट स्थान भी प्रतिष्ठित किया, जैसा कि यहाँ 'भक्ति क्यों ?' 'भक्ति-शक्ति', इ० शीर्षकों के अन्तर्गत उन्हीं की वाणी में प्रस्तुत किया गया है।

इन दोनों महापुरुषों की इस उपकारक विचार-वाणी को यहाँ मूल गुजराती से अनूदित करके हिंदी में ही रखा गया है, परंतु उनका पद्य इस पुस्तिका में तो जैसा का तैसा मूल गुजराती या हिंदी में रखा गया है। विदेहस्थ यो. यु. सहजानन्दजी की स्वयं की भावना और आशा-अपेक्षा थी कि परमकृपालुदेव श्रीमद् राजचंद्रजी की वाणी 'सर्वजनश्रेयाय' गुजराती से और साम्प्रदायिकता की संकीर्ण सीमाओं से उठकर मतपंथ के सीमित क्षेत्र के पार व्यापक विराट विश्व में व्यक्त और व्याप्त हो। इस दृष्टि से उन्होंने इन पंक्तियों के प्रस्तोता को अनुग्रह करके एक पत्र में लिखा था कि–

"संत कबीर और संत श्रीमद् राजचन्द्र के साहित्य के अध्ययन-अनुशीलन से स्व-पर उपकार तो अवश्यंभावी है ही। इसके अतिरिक्त श्रीमद् का साहित्य संत कबीर की भाँति गुर्जरसीमा को लांघ करके हिन्दी-भाषी विस्तारों में महकने लगे यह भी वांछनीय है। यद्यपि हिन्दी में उनका साहित्य-आलेखन बेशक हुआ है, परन्तु उसका प्रचार जैसा होना चाहिए वैसा नहीं हुआ। महात्मा गांधीजी के उस अहिंसक शिक्षक को गांधीजी की भाँति जगत के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए, कि जिससे जगत शांति की खोज में सही मार्गदर्शन प्राप्त कर सके। इतना होते हुए भी, हम लोगों की यह कोई सामान्य करामात नहीं है कि हम लोगों ने उनको (श्रीमद् को) भारत के एक कोने में ही छिपाकर रखा है- क्योंकि मतपंथ-बादल की घटा में सूरज को ऐसा दबाये रखा है कि शायद ही कोई उनके दर्शन कर सकें! ॐ"

(पत्र दिनांक १४-१२-६९)

और इस हेतु उन्होंने इस अल्प योग्यता वाली आत्मा की कलम की ओर दृष्टि लगाई थी, इतना ही नहीं, उनके अल्प किन्तु बहुमूल्य सत्समागम के अंतर्गत उन्होंने श्रीमद् राजचंद्रजी के "आत्मसिद्धि शास्त्र" का समुचित हिन्दी अनुवाद करने की प्रेरणा देकर उसका प्रारंभ करवाया था और प्रायः आधा अनुवाद स्वयं जाँच-सुधार भी गए थे। किन्तु इसी बीच हुए उनके देहविलय के प्रमुख कारण से यह कार्य आगे स्थगित हो गया।

अब शायद उनके ही अनुग्रह और योगबल से श्रीमद्जी के एवं उनके स्वयं के साहित्य को संपादित, अनूदित कर हिन्दी, अंग्रेजी में प्रस्तुत करने का समय समीप आ गया है। श्रीमद् राजचंद्र आश्रम की अधिष्ठात्री पूज्या माताजी इसके लिए बारबार प्रेरणा दे रहीं हैं। गुजराती नहीं जानने वाले आत्मार्थीजनों के उपयोग के हेतु मूल भाषा में परन्तु देवनागरी लिपि में स्वतंत्र रूप से यह पुस्तक इस

दिशा में प्रथम चरण है। सहजानन्द सुधा, पत्र सुधा, सहजानन्द विलास, इ. का प्रकाशन हो चुका है। अब संभवतः दूसरा प्रकाशन होगा उपर्युक्त श्री आत्मसिद्धि शास्त्र का अनुवाद, उनकी जीवनी, प्रवचन, इ.। इस प्रयास में सबके सुझाव, शुभकामनाएं सादर निमंत्रित हैं।

संशोधित परिवर्द्धित इस द्वितीय आवृत्ति में भी शेष रहीं क्षतियों के लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं। अनेकों के 'भक्ति-कर्त्तव्य' में यह पुस्तक निमित्त बने-ऐसी शुभकामना एवं प्रशस्त महत् पुरुषों के चरणों में भक्ति-वंदना के साथ—

गुरुपूर्णिमा : २४-७-८३
'अनंत', १२, केम्ब्रिज रोड
अलसूर, बेंगलोर-५६० ००८

प्रतापकुमार ज. टोलिया

॥ ॐ नमः ॥

मंत्रीश्री का निवेदन

प्रिय पाठकगण!

परम कृपालुदेव श्रीमद् राजचन्द्रजी की पावन भक्ति-वाणी के साथ साथ जिनकी वाणी प्रकाशित कर यहां आपके करकमलों में समर्पित कर रहे हैं वे इस युग के एक अद्वितीय सत्पुरुष थे। आप का प्रातः स्मरणीय नाम था योगीन्द्र युगप्रधान "श्री सहजानंदघनजी महाराज"। आप ही श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, हम्पी के संस्थापक थे जहाँ से यह पुस्तक प्रकाशित हो रही है! उक्त आश्रम के मंत्री के नाते इस महापुरुष का एवं उनकी अंतिम साधनाभूमि इस आश्रम का स्वल्प परिचय देना आवश्यक समझता हूँ।

आज सारे संसार में अशांति का वातावरण छाया हुआ है। इसे मिटाने की जो खोज हो रही है, वह भी सही दिशा में नहीं है। एक ओर तो जड विज्ञान जड महिमा की लालसा दिखलाकर चैतन्य विज्ञान को मानों फटकारने या चुनौती देनें जा रहा है, जबकि दूसरी ओर चैतन्य विज्ञान की आड में संसार भर के बहुत से धर्मगुरु धर्मसंप्रदायों के विभिन्न क्रियाकांडों में पड़कर बाहरी कलेवरों में उलझकर, धर्म चैतन्य के अंतर भेद को भुलाकर अपने कर्त्तव्य पथ से च्युत हो रहे हैं।

जो चैतन्य विज्ञान या धर्म शांति दिला सकता है, उसी के नाम से हो रहे इन क्रियाकांडों को देखने पर अंतरात्मा से यह स्पष्ट प्रतीति

होती है कि हम ज्ञानियों के सही रास्तों से लाखों योजन दूर उल्टी दिशा में चलने की क्रिया कर रहे हैं। अध्यात्म प्रेमियों को चाहिये कि वे 'सही दिशा में' चलने की 'सही क्रिया' को अपनाये तभी हो सही स्थान पहुंचा जा सकता है।

ओघा, मुहपत्ती, चरवला, इत्यादि उपकरण और सामायिक आदि 'क्रिया' करते हुए भी मन में पुणिया श्रावक के से भाव नहीं रहने से वे क्रियाएँ अमृतरूपी फलवती नहीं हो पा रही हैं। अतः हमें भावना और दृष्टि को बदलना होगा, अंतर्मुख करना होगा और यह करने के लिये आवश्यक है सच्चे ज्ञानियों का अवलंबन।

इस काल में साक्षात् ज्ञानियों का ऐसा अवलंबन प्राप्त होना दुर्लभ ही नहीं, असंभव भी है। ऐसी अवस्था में उनकी अमृत-वाणी का सहारा श्रेयस्कर हो सकता है. जो कि सद्भाग्य से उनके द्वारा लिखित है और ग्रंथों के द्वारा हमारे लिये प्रगट और सुलभ है।

ज्ञानी वही है जिनको आतमा का साक्षात्कार है, प्रतिपल उसका लक्ष्य-सातत्य बना रहता है। खाते-पीते, सोते-जागते, घूमते-फिरते, बोलते-चलते उनका यह आत्मलक्ष्य कभी भी खंडित नहीं होता। इस युग में ऐसे ही अद्भुत, अद्वितीय, विरल ज्ञानी थे "ज्ञानावतार युगपुरुष **श्रीमद् राजचंद्रजी**" एवं उन्हीं के पद्चिह्नों पर चलने वाले, पहुंचे हुए फिर भी, गुप्त, अप्रगट, नीरव एवं अति विनम्र रहनेवाले "योगीन्द्र युगप्रधान **श्री सहजानन्दघनजी**", श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम हम्पी के क्रान्तदर्शी संस्थापक। उनकी अनुभूति संपन्न एवं आत्मज्ञान-निसृत अमृतवाणी को प्रकाशित करने का उक्त आश्रम के ट्रस्टियों ने निश्यय किया और उसके फलस्वरुप यह पुस्तिका (द्वितीयावृति) एवं सहजानंद सुधा, पत्रसुधा, सहजानंद विलास, इत्यादि प्रस्तुत है।

इन ग्रंथों का आप मननपूर्वक अध्ययन करेंगे, भक्ति करेंगे और तदनुसार प्रयोग करते हुए महाज्ञानी गुरुदेव के बतलाये हुए मार्ग पर

भजने का प्रयत्न करेंगे तो आप निश्चय ही उस सही दिशा में प्रयाण कर सकेंगे जहाँ से हमें पूर्ण शांति, आत्म शांति रूपी मंजिल पर पहुंचना है।

परमकृपालु ज्ञानावतार युगपुरुष श्रीमद् राजचन्द्रजी ने कहा है कि इस काल में ज्ञानियों का होना दुर्लभ है। अगर वे हों भी तो उनको पहचानना बहुत कठिन है। और यदि पहचान भी लें तो ऐसे ज्ञानी इस लोक में अधिक रह नहीं पाते हैं। कृपालु देव की यह आर्षवाणी बिलकुल सत्य है।

स्वयं परमकृपालु देव श्रीमद् राजचन्द्रजी एवं पूज्य श्री सहजानंदघनजी महाराज इस काल में अवतरित हुए, किन्तु उनकी उपस्थिति में कुछ ही लोग उनके संपर्क में आये और उनको सही रूप में पहचान पाये। आज तो उनकी अमृत-वाणी जो भी पत्रों ग्रंथों द्वारा लिखित है या टेपरिकार्डिंगों द्वारा ध्वनि-मुद्रित है उसी से हमें संतोष मानना पड़ता है – समाधान ढूंढना पड़ता है।

इस काल में ज्ञानियों की उपस्थिति होते हुए भी हम लोग उन महापुरुषों के सम्पर्क में आ नहीं पाये, यह बड़ी खेद और पश्चात्ताप की बात है। हमारे अल्प पुण्य का ही यह प्रभाव है। पूज्य योगीराज श्री. सहजानंदघनजी की वाणी कोई भी अध्यात्म प्रेमी जिज्ञासु यदि सरलता एवं निखालस भाव से पढ़े और मनन करे तो उनको यह समझ में आये बिना नहीं रहेगा कि ऐसे महापुरुषों ने जो रास्ता बतलाया है वही अध्यात्म का सच्चा रास्ता है।

परम पूज्य योगीराज श्री. सहजानन्दघनजी महाराज संवत् १९७० में अर्थात् आज से प्राय: ७० वर्ष पूर्व गुजरात के कच्छ प्रदेश के "डुमरा" नामक गाँव में जन्मे। आपने एक अद्भुत अंतर अनुभव के बाद २१ वर्ष की युवावस्था में दीक्षा ली। दीक्षागुरु ने आपका नाम श्री. भद्रमुनि रक्खा था। १२ वर्ष तक गुरुकुलवास में

संप्रदाय में रहे । परन्तु आपको अपने पूर्वभवों की स्मृति हो जाने से एकान्तवास में गिरि गुफाओं में साधना करने की अंतः प्रेरणा हुई । आपने राजस्थान के बाड़मेर जिले के [illegible] गांव में ही सर्वप्रथम एकान्तवास गुफा में रहना प्रारंभ किया । गुफा से आप केवल एक ही समय दोपहर गोचरी के लिये गांव में पदार्पण करते थे । शेष पूरा समय आप अपनी साधना में व्यतीत करते थे । आप "ठाम चौविहार" कई वर्षों से करते थे । आपके आसपास जंगली हिंसक पशुओं को फिरते हुए कई लोगों ने अपनी नजरों से देखा था ।

वहां से आप सिवाना, बालभूआ रोड, वडाणा, खंडगिरि-उदयगिरि, बीकानेर, ईडर, अगास, वडवा, ववाणिया, डुमरा, आबूजी इत्यादि कई स्थानों पर साधना करते हुए संवत २०१७ में 'कोरडा' ग्राम में पधारे, जहां पर अनेक प्रमुख लोगों के सामने भक्ति का कार्यक्रम हुआ । "भक्ति में क्या शक्ति है" उसकी महिमा उपस्थित लोगों ने अपनी नजरों से देखी । आप को वहां देवों द्वारा "युगप्रधान" पद-प्रदान किया गया !! जय जयकार हो रहा था ।

अपने द्वारा लोगों का कुछ उपकार हो, अपनी साधना का औरों को कुछ संस्पर्श हो, इस हेतु से आप उदयानुसार विचरण करते हुए इस हम्पी ग्राम पधारे । अपने ज्ञानबल से अपनी यह पूर्व की साधनाभूमि जानकर भव्य जीवों के उपकार हेतु आपने संवत् २०१७ आषाढ़ शुक्ला ११ को अपने परम उपकारी परमकृपालु श्रीमद् राजचन्द्रजी के नाम से आश्रम की स्थापना की । आपकी ज्ञान धारा इतनी निर्मल थी कि उसका अनुभव आपके सम्पर्क में आये हुए कई महानुभावों को हुआ है । अवधिज्ञान के उपरान्त मनःपर्यवज्ञान की कई घटनाएं अनेक मुमुक्षुओं को अपने आप देखने में आई । अध्यात्म सम्बन्धी अनेक मुमुक्षुओं के मन में उठी हुई शंकाओं का समाधान बिना पूछे ही आप अपने प्रवचनों में कर दिया करते थे ।

इस काल में ऐसे ज्ञानी पुरुषों का साक्षात्कार होते हुए भी हम लोग लाभ उठाने से वंचित रह गये। इसका कारण आपके उदयानुसार विचरण था। जो लोग निखालस भाव से अध्यात्म-उन्नति हेतु आपके सम्पर्क में आये और जिन्होंने आपकी निर्मल धारा को पहचाना उसका पान करते रहे। मगर ऐसे बहुत कम मुमुक्षु मिले। यह काल का प्रभाव है।

आपकी पावन उपस्थिति में इस आश्रम की सर्वतोमुखी उन्नति हुई और अभी भक्ति की साकार मूर्ति आत्मज्ञानी पूज्य श्री 'धनदेवी' माताजी की निश्रा में दिनों दिन हो रही है। पूज्य माताजी की ज्ञान धारा भी अद्भुत है, जिसका परिचय स्वयं पूज्य गुरुदेव श्री. सहजानंदघन जी ने ही कराया था।

इस आश्रम में आत्मशांति के हेतु आने वाले साधर्मी भाई-बहनों के लिये ठहरने की और भोजनशाला की व्यवस्था है। नित्य कार्यक्रम में सुबह भक्ति, स्वाध्याय, पूजा, दोपहर को स्वाध्याय भक्ति एवं रात को भक्ति का क्रम नित्य चलता है। पूनम की रात को अखंड भक्ति का कार्यक्रम होता है। विशेष तिथियों में भी बड़ी पूजा वगैरह का कार्यक्रम भी चलता है। पर्युषण पर्व पर कई लोग यहाँ पर पर्वाराधना हेतु एकत्रित होते हैं। कई बड़ी तपस्या वाले भी यहाँ पधारकर आनन्द से तपस्या करते हैं। दीपावली पर भी तीन दिन तक अखंड भक्ति का कार्यक्रम चलता है। पर्वतिथियों में कई मुमुक्षुओं की ओर से स्वामी वात्सल्य भी होते रहते हैं। साधना करने वाले मुमुक्षुओं के लिये यह एक एकांत और शांत वातावरण का अच्छा स्थान है।

यहां पर परमकृपालु श्रीमद् राजचन्द्रजी, योगीन्द्र श्री सहजानन्दघनजी महाराज का भव्य गुरुमन्दिर बना हुआ है। पास में युगप्रधान दादा श्री. जिनदत्तसूरि महाराज का दादावाडी मन्दिर

है। हर रोज पूजा आरती नियमानुसार होती है। अब केवल शिखरबंध जिनालय बनाने का काम शेष है जो गतिशील हो चुका है। यह तीर्थ जिनालय बन जाने से परिपूर्ण तीर्थ की कमी को पूरी करेगा।

अब परम पूज्य योगीराज युगप्रधान श्री. सहजानन्दघनजी महाराज हमारे मध्य नहीं रहे। परंतु आपकी वाणी अभी भी आपका साक्षात्कार होने का प्रमाण देती है। उन्हीं परम पूज्य की विविध रूपी वाणी को कुछ अंशों में यहां प्रकाश में लाने का हमें सुअवसर प्राप्त हो रहा है। अतः हम अपने को धन्य समझते हैं। आपका और भी साहित्य : प्रवचन, अनंदघन चौवीशी की सार्थ टीका इत्यादि ग्रंथ प्रकट करने हैं, जो कि सामग्री मिलने पर यथासमय प्रकाशित हो सकेगा।

इस पुस्तक को प्रकाशित करने में जिन जिन भाई-बहनों ने तन से, मन से और धन से सहायता की है उन सभी के प्रति मैं आश्रम के ट्रस्टिओं की ओर से आभार व्यक्त करता हूं।

छअस्थ अवस्था के कारण लिखने में कोई गलति हुई हो तो आप सुज्ञ पाठक गण क्षमा करेंगे ऐसी आशा व्यक्त कर समाप्त करता हूं।

आपका संतचरणरज

एस. पी. घेवरचंद जैन

आश्रम मंत्री,

[प्रेसिडेन्ट, चेम्बर ओफ कोमर्स एण्ड इन्डस्ट्रीज

होस्पेट (कर्नाटक)]

परमगुरु की प्रेरक वाणी

- मैं सहजात्म स्वरूपी आत्मा हूँ।
- मैं परिपूर्ण सुखी हूँ, सर्व परिस्थितियों से भिन्न हूँ।
- स्वयं में स्थित हो जायँ, सब सध जायगा उससे।
- न पड़ें वाद-विवाद में, मौन-ध्यान में रहें स्थित।
- प्रतिकूलताओं को "अनुकूलताएँ" मानें।
- धर्म अर्थात् "मन की धरपकड़"।
- मन का 'अ-मन' हो जाना, मौन हो जाना ही आत्मज्ञान का जागरण है।

—योगीन्द्र युगप्रधान श्री सहजानन्दघनजी



पू. आत्मज्ञा माताजी श्री धनदेवीजी

सद्‌गुरू-महिमा

अहो सत्पुरुष के वचनों ! अहो मुद्रा अहो सत्संग !!
जगावें सुप्त चेतन को, स्खलित वृत्तियाँ करें उत्तुंग ।।१।।

जो दर्शन मात्र से निर्दोष अपूर्व स्वभाव प्रेरक हैं;
स्वरूप-प्रतीति संयम-अप्रमत्त, समाधि पुष्ट करें ।।२।।

चढ़ाकर क्षपक-श्रेणि पर, धरावें ध्यान शुक्ल अनन्य;
पूर्ण वीतराग निर्विकल्प, आप स्वभाव दायक धन्य ।।३।।

अयोगी भाव से प्रान्ते, स्व–अव्याबाध–सिद्ध अनन्त–
स्थिति दाता अहो गुरूराज! वर्तो कालत्रय जयवन्त।।४।।

अहो गुरूराज की करूणा ! अनन्त संसार जड़ जारे;
जो सहजानन्द-पद देकर, अनादिय रंकता टारे ।।५।।

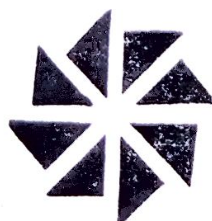
—श्री सहजानन्दघन



जिनेश्वरनी वाणी

अनंत अनंत भाव भेद थी भरेली भली,
अनंत अनंत नय निक्षेपे व्याख्यानी छे;
सकल जगत हित कारिणी, हारिणी मोह,
तारिणी भवाब्धि, मोक्ष चारिणी प्रमाणी छे;
उपमा आप्यानी जेने तमा राखवी ते व्यर्थ,
आपवाथी निज मति मपाई में मानी छे;
अहो! राजचन्द्र बाल ख्याल नथी पामता ए,
जिनेश्वर तणी वाणी जाणी तेणे जाणी छे,
(गुरूराज तणी वाणी जाणी तेणे जाणी छे.)

—श्रीमद् राजचन्द्र



जड-चेतन विवेक

जड ने चैतन्य बन्नै द्रव्यनो स्वभाव भिन्न,
सुप्रतीतपणे बन्ने जेने समजाय छे;
स्वरूप चेतन निज, जड छे सम्बन्ध मात्र
अथवा ते ज्ञेय पण परद्रव्यमांय छे;
अेवो अनुभवनो प्रकाश उल्लासित थयो,
जडथी उदासी तेने आतमवृत्ति थाय छे;
कायानी विसारी माया, स्वरूपे समाया अेवा
निर्ग्रंथनो पंथ भव-अन्तनो उपाय छे;
देह जीव एकरूपे भासे छे अज्ञान वडे,
क्रियानी प्रवृत्ति पण तेथी तेम थाय छे;
जीव नीउत्पत्ति अने रोग, शोक, दुःख, मृत्यु,
देहनो स्वभाव जीव पदमां जणाय छे;
अेवो जे अनादि एकरूपनो मिथ्यात्वभाव,
ज्ञानीनां वचन वडे दूर थई जाय छे;
भासे जड चैतन्यनो प्रगट स्वभाव भिन्न,
बन्ने द्रव्य निज निज रूपे थाय छे;

—श्रीमद् राजचन्द्र



श्री सद्गुरू भक्ति रहस्य
भक्तिना वीस दोहरा

हे प्रभु ! हे प्रभु ! शुं कहुँ, दीनानाथ दयाल
हुँ तो दोष अनंतनु, भाजन छुं करुणाळ ।।१।।

शुद्ध भाव मुजमां नथी, नथी सर्व तुज रूप
नथी लघुता के दीनता, शुं कहुँ परम स्वरूप? ।।२।।

नथी आज्ञा गुरूदेवनी, अचल करी उरमांही
आप तणो विश्वास दृढ, ने परमादर नांही ।।३।।

जोग नथी सतसंगनो, नथी सत्सेवा जोग,
केवल अर्पणता नथी, नथी आश्रय अनुयोग ।।४।।

'हुँ पामर शुं करी शकुं', अेवो नथी विवेक,
चरण शरण धीरज नथी, मरण सुधीनी छेक ।।५।।

अचिंत्य तुज माहात्म्यनो, नथी प्रफुल्लित भाव,
अंश न अेके स्नेहनो, न मले परम प्रभाव ।।६।।

अचल रूप आसक्ति नहि, नहि विरहनो ताप,
कथा अलभ्य तुज प्रेमनी, नहि तेनो परिताप ।।७।।

भक्ति मार्ग प्रवेश नहि, नहि भजन दृढ भान,
समज नहि निजधर्मनी, नहि शुभ देशे स्थान ।।८।।

कालदोष कलिथी थयो, नहि मर्यादा धर्म,
तोय नहि व्याकुलता, जुओ प्रभु मुज कर्म ।।९।।

सेवा ने प्रतिकूल जे, ते बंधन नथी त्याग,
देहेंद्रिय माने नहि, करे बाह्य पर राग ।।१०।।

तुज वियोग स्फुरतो नथी, वचन नयन यम नांही,
नहि उदास अनभक्तथी, तेम गृहादिक मांही।।११।।

अहंभावथी रहित नहि, स्वधर्म संचय नांही,
नथी निवृत्ति निर्मल पणे अन्य धर्मनी कांई ।।१२।।

अेम अनंत प्रकारथी, साधन रहित हुँय,
नहीं अेक सद्गुण पण, मुख बतावुं शुंय? ।।१३।।

केवल करूणामूर्ति छो, दीनबंधु दीनानाथ,
पापी परम अनाथ छुं, ग्रहो प्रभुजी हाथ ।।१४।।

अनंत कालथी आथडयो, विना भान भगवान
सेव्या नहि गुरू संत ने, मूक्यु नहि अभिमान।।१५।।

...त चरण आश्रय विना, साधन कर्यां अनेक,
पार न तेथी पामियो, ऊग्यो न अंश विवेक ।।१६।।

सहु साधन बंधन थयां, रहयो न कोई उपाय
सत्‌साधन समज्यो नहिं, त्यां बंधन शुं जाय?।।१७।।

प्रभु प्रभु लय लागी नहि, पडयो न सद्‌गुरू पाय
दीठा नहि निज दोष तो, तरिअे कोण उपाय ।।१८।।

अधमाधम अधिको पतित सकल जगतमां हुँय
अे निश्चय आव्या बिना, साधन करशे शुं य?।।१९।।

पड़ी पड़ी तुज पदपंकजे, फरि फरि मागुं अे ज
सद्‌गुरू संत स्वरूप तुज, अे दृढ़ता करी दे ज।।२०।।

—श्रीमद्‌ राजचन्द्र



कैवल्य बीज शुं ?

त्रोटक छंद

यम नियम संयम आप कियो,
पुनि त्याग–विराग अथाग लह्यो,
बनवास लियो मुख मौन रह्यो,
दृढ आसन पद्म लगाय दियो ॥१॥

मन पौन निरोध स्व–बोध कियो,
हठ जोग प्रयोग सु ,तार भयो,
जप भेद जपे तप त्यौंहि तपे,
उरसेंहि उदासी लही सबपें ॥२॥

सब शास्त्रन के नय धारि हिये,
मतमंडन – खंडन भेद लिये,
वह साधन बार अनंत कियो
तदपि कछु हाथ हजु न पर्यो॥३॥

अब क्यों न बिचारत है मनसें,
कछु और रहा उन साधन सें ?
बिन सद्गुरू कोय न भेद लहे,
मुख आगल हैं कह बात कहे? ॥४॥

करुना हम पावत है तुमकी,
वह बात रही सुगुरू गमकी,
पल में प्रगटे मुख आगल से,
जब सद्‌गुरूचर्न सुप्रेम बसे ॥५॥

तनसे, मनसे, धनसे, सबसे,
गुरूदेव की आन स्व-आत्म बसे,
तब कारज सिद्ध बने अपनो,
रस अमृत पावहि प्रेम घनो ॥६॥

वह सत्य सुधा दरसावहिगे,
चतुरांगल है दृगसे मिल हे,
रस देव निरंजन को पिवही
गहि जोग जुगो जुग सो जीवही ॥७॥

पर प्रेम–प्रवाह बढ़े प्रभु से,
सब आगम भेद सुउर बसे,
वह केवल को बीज ज्ञानी कहे,
निजको अनुभौ बतलाई दिये ॥८॥

—श्रीमद् राजचन्द्र

क्षमापना

हे भगवान ! हुं बहु भूली गयो, में तमारां अमूल्य वचनोने लक्षमां लीधां नहीं. में तमारां कहेलां अनुपम तत्त्वनो विचार कर्यो नहीं. तमारा प्रणीत करेला उत्तम शीलने सेव्युं नहीं. तमारां कहेला दया, शांति, क्षमा अने पवित्रता में ओळख्यां नहीं. हे भगवान ! हुं भूल्यो, आथड्यो, रझळयो अने अनंत संसारनी विडम्बनामां पड्यो छुं. हुं पापी छुं. हुं बहु मदोन्मत्त अने कर्म रजथी करने मलीन छुं. हे परमात्मा ! तमारां कहेलां तत्त्व विना मारो मोक्ष नथी. हुं निरंतर प्रपंचमा पड्यो छुं; अज्ञानथी अंध थयो छुं; मारामां विवेक शक्ति नथी, अने हुं मूढ छुं. हुं निराश्रित छुं, अनाथ छुं. निरागी परमात्मा ! हुं हवे तमारुं,तमारा धर्मनुं अने तमारा मुनिनुं शरण ग्रहुं छुं. मारा अपराध क्षय थई हुं ते सर्व पापथी मुक्त थउं अे मारी अभिलाषा छे. आगळ करेलां पापोनो हुं हवे पश्चाताप करूं छुं. जेम जेम हुं सूक्ष्म विचारथी ऊंडो उतरूं छुं तेम तेम तमारा तत्त्वना चमत्कारो मारा स्वरूपनो प्रकाश करे छे. तमे निरागी, निर्विकारी, सच्चिदानंदस्वरूप, सहजानंदी, अनंतज्ञानी, अनंतदर्शी अने त्रैलोक्य-

प्रकाशक छो. हुं मात्र मारा हितने अर्थे तमारी साक्षीअे क्षमा चाहुं छु. अेक पळ पण तमारां कहेलां तत्वनी शंका न थाय. तमारा कहेला रस्तामां अहोरात्र हुं रहुं, अे ज मारी आकांक्षा अने वृत्ति थाओ! हे सर्वज्ञ भगवान! तमने हुं विशेष शुं कहुं ? तमाराथी कांई अजाण्युं नथी. मात्र पश्चातापथी हुं कर्मजन्य पापनी क्षमा ईच्छुं छुं.

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

—श्रीमद् राजचन्द्र

वि. सं. १९४२

आलोचना

प्रथम संवत्सरी अने ए दिवस पर्यंत संबंधीमां कोई पण प्रकारे तमारो अविनय, आशातना, असमाधि मारा मन, वचन, कायाना कोई पण योगाध्यवसायथी थई होय तेने माटे पुनः पुनः क्षमावुं छुं.

अंतर्ज्ञान थी स्मरण करतां एवो कोई काळ जणातो नथी वा सांभरतो नथी के जे काळमां, जे समयमां आ जीवे परिभ्रमण न कर्युं होय, संकल्प-विकल्पनुं रटण न कर्युं होय, अने ए वडे 'समाधि' न भूल्यो होय. निरंतर ए स्मरण रहया करे छे, अने ए महा वैराग्य ने आपे छे.

वळी स्मरण थाय छे के ए परिभ्रमण केवल स्व-च्छंदथी करतां जीवने उदासीनता केम न आवी? बीजा जीवो परत्वे क्रोध करतां, मान करतां, माया करतां, लोभ करतां के अन्यथा करतां ते माठु छे एम यथायोग्य कां न जाण्यु ? अर्थात् एम जाणवु जोइतु हतु छतां न जाण्युं ए वळी फरी परिभ्रमण करवानो वैराग्य आपे छे.

वळी स्मरण थाय छे के जेना विना एक पळ पण हुँ नहीं जीवी शकुं ऐवा केटलाक पदार्थो (स्त्री आदिक) ते अनंत वार छोडतां, तेनो वियोग थया अनंत काल पण थई गयो; तथापि तेना विना जिवायुं ए कंई थोडु आश्चर्यकारक नथी. अर्थात् जे जे वेळा तेवो प्रीतिभाव कर्यो हतो ते ते वेळा ते कल्पित हतो ऐवो प्रीतिभाव कां थयो?ए फरी फरी वैराग्य आपे छे.

वळी जेनु मुख कोई काळे पण नहीं जोउं, जेने कोई काळे हुं ग्रहण नहीं ज करूं; तेने घेर पुत्रपणे, स्त्रीपणे, दासपणे, दासीपणे, नाना जंतुपणे शा माटे जन्म्यो? अर्थात् एवा द्वेषथी एवा रूपे जन्मवु पडयु ! अने तेम करवानी तो ईच्छा नहोती ! कहो, ए स्मरण थतां आ कलेषित आतमा परत्वे जुगुप्सा नहीं आवती होय ? अर्थात् आवे छे.

वधारे शुं कहेवुं ? जे जे पूर्वना भवांतरे भ्रांतिपणे
भ्रमण कर्युं; तेनुं स्मरण थतां हवे केम जीववुं
चिंतना थई पड़ी छे. फरी न ज जन्मवुं अने फरी ए
न ज करवुं एवुं दृढत्व आत्मामां प्रकाशे छे, प
केटलीक निरूपायता छे त्यां केम करवुं ? जे दृढ़त
छे ते पूर्ण करवी; जरूर पूर्ण पडवी ए ज रटण छे
पण जे कंई आडुं आवे छे ते कोरे करवुं पडे छे अर्था
खसेडवुं पडे छे, अने तेमां काळ जाय छे, जीवन चाल
जाय छे, एने न जवा देवुं. ज्यां सुधी यथायोग्य जय
थाय त्यां सुधी एम दृढता छे तेनुं केम करवुं ? कदा
कोई रीते तेमांनुं कंई करीए तो तेवुं स्थान क्यां
के ज्यां जईने रहीए ? अर्थात् तेवा संतो क्यां छे,
ज्यां जईने ए दशामां बेसी तेनुं पोषण पामीए? त्या
हवे केम करवुं ?

"गमे तेम हो, गमे तेटलां दुःख वेठो, गमे तेटल
परिषह सहन करो, गमे तेटला उपसर्ग सहन करो, ग
तेटली व्याधिओ सहन करो, गमे तेटली उपाधिअ
आवी पडो, गमे तेटली आधिओ आवी पडो, गमे त
जीवनकाळ एक समय मात्र हो, अने दुर्निमित्त हो, प
एम करवुं ज."

'त्यां सुधी हे जीव! छूटको नथी.'

आम नेपथ्य मांथी उत्तर मले छे, अने ते यथायोग लागे छे.

क्षणे क्षणे पलटाती स्वभाव वृत्ति नथी जोईती. अमुक काळ सुधी शून्य सिवाय कंई नथी जोईतु ; ते न होय तो अमुक काळ सुधी संत सिवाय कंई नथी जोईतुं; ते न होय तो अमुक काल सुधी सत्संग सिवाय कंई नथी जोईतु; ते न होय तो आर्याचरण (आर्य पुरूषोए करेलां आचरण) सिवाय कंई नथी जोईतुं; ते न होय तो जिनभक्तिमां अति शुद्ध भावे लीनता सिवाय कंई नथी जोईतुं;ते न होय तो पछी मागवानी ईच्छा पण नथी.

गम पडया विना आगम अनर्थकारक थई पडे छे. सत्संग विना ध्यान ते तरंगरूप थई पडे छे. संत विना अंतनी वातमां अंत पमातो नथी. लोक संज्ञाथी लोकाग्रे जवातु नथी. लोक-त्याग विना वैराग्य यथायोग्य पामवो दुर्लभ छे.

'ए कंई खोटु छे ?' शुं ?

परिभ्रमण करायु, ते करायु, हवे तेनां प्रत्याख्यान लईए तो?

लई शकाय.

ए पण आश्चर्यकारक छे;

अत्यारे ए ज. फरी योगवाइए मळीशुं.

ए ज विज्ञापन.

षट्पद विवेक अने सद्गुरू भक्ति रहस्य

अनन्य शरणना आपनार एवा

श्री सद्गुरूदेव ने

अत्यन्त भक्ति थी नमस्कार

शुद्ध आत्मस्वरूपने पाम्या छे एवा ज्ञानी पुरूषोए नीचे कह्यां छे ते छ पदने सम्यग्दर्शनना निवासना सर्वोत्कृष्ट स्थानक कह्यां छे.

षट्पद विवेक

प्रथमपद :- 'आत्मा छे.' जेम घटपट आदि पदार्थो छे तेम आत्मा पण छे. अमुक गुण होवाने लीधे जेम घटपट आदि होवानुं प्रमाण छे; तेम स्वपर प्रकाशक एवी चैतन्य सत्तानो प्रत्यक्ष गुण जेने विषे छे एवो

आत्मा होवानुं प्रमाण छे.

बीजुं पदः- 'आत्मा नित्य छे.' घटपट आदि पदार्थो अमुक काळ वर्ती छे घटपटादि संयोगे करी पदार्थ छे. आत्मा स्वभावे करीने पदार्थ छे; केम के तेनी उत्पत्ति माटे कोई पण संयोगो अनुभव योग्य थता नथी. कोई पण संयोगी द्रव्य थी चेतन सत्ता प्रगट थवा योग्य नथी, माटे अनुत्पन्न छे. असंयोगी होवाथी अविनाशी छे, केम के जेनी कोई संयोगथी उत्पति न होय, तेनो कोई ने विषे लय पण होय नहीं.

त्रीजुं पदः- 'आत्मा कर्ता छे.' सर्व पदार्थ अर्थक्रिया सम्पन्न छे. कंई न कंई परिणाम क्रिया सहित ज सर्व पदार्थ जोवामां आवे छे. आत्मा पण क्रिया सम्पन्न छे. क्रिया सम्पन्न छे, माटे कर्ता छें. ते कर्ता पणुं त्रिविध श्री जिने विवेच्युं छे. परमार्थथी स्वभाव परिणतिए निजस्वरूपनो कर्त्ता छे. अनुपचरित (अनुभवमां आववा योग्य, विशेष संबंध सहित) व्यवहारथी ते आत्मा द्रव्य कर्मनो कर्ता छे. उपचार थी घर, नगर आदिनो कर्ता छे.

चोथुं पदः- 'आत्मा भोक्ता छे.' जे जे कंई क्रिया छे ते ते सर्व सफल छे, निरर्थक नथी. जे कंई पण

करवामां आवे तेनुं फल भोगववामां आवे एवो प्रत्यक्ष
अनुभव छे.

विष खाधाथी विषनुं फळ; साकर खावाथी साकरनुं
फल; अग्नि स्पर्शथी ते अग्नि स्पर्शनुं फल; हिमने
स्पर्श करवाथी हिमस्पर्शनुं जेम फळ थया विना रहेतुं
नथी, तेम कषायादि के अकषायादि जे कंई प
परिणामे आत्मा प्रवर्ते तेनुं फळ पण थवा योग्य ज छे
अने ते थाय छे. ते क्रियानो आत्मा कर्त्ता होवाथी
भोक्ता छे.

पांचमुं पदः - 'मोक्षपद छे.' जे अनुपचरित
व्यवहार थी जीवने कर्मनुं कर्त्तापणु निरूपण कर्युं
कर्त्तापणु होवाथी भोक्तापणुं निरूपण कर्युं, ते कर्मनुं
टळवापणुं पण छे केम के प्रत्यक्ष कषायादिनुं तीव्रपणु
होय पण तेना अनभ्यास थी, तेना अपरिचयथी, तेने
उपशम करवाथी, तेनुं मंदपणुं देखाय छे, ते क्षीण
थवा योग्य देखाय छे, क्षीण थई शके छे, ते ते बंध
भाव क्षीण थई शकवा योग्य होवाथी तेथी रहित एवो
जे शुद्ध आत्म स्वभाव ते रूप मोक्षपद छे.

छठुं पदः- ते 'मोक्षनो उपाय छे.' जो कदी कर्म
बंध मात्र थया करे एम ज होय, तो तेनी निवृत्ति कोई

काले संभवे नहीं; पण कर्मबंध थी विपरीत स्वभाव वाला एवां ज्ञान, दर्शन, समाधि, वैराग्य, भक्त्यादि साधन प्रत्यक्ष छे, जे साधननां बले कर्मबंध शिथिल थाय छे. उपशम पामे छे, क्षीण थाय छे. माटे ते ज्ञान, दर्शन, संयमादि मोक्षपदना उपाय छे.

श्री ज्ञानीपुरूषोए सम्यक् दर्शनना मुख्य निवासभूत कह्यां एवां आ छ पद अत्रे संक्षेपमां जणाव्यां छे. समीप मुक्तिगामी जीवने सहज विचारमां ते सप्रमाण थवा योग्य छे, परम निश्चय रूप जणावा योग्य छे. तेनो सर्व विभागे विस्तार थई तेना आत्मामां विवेक थवा योग्य छे. आ छ पद अत्यन्त संदेह रहित छे, एम परम पुरूषें निरूपण कर्युं छे. ए छ पदनो विवेक जीवने स्वस्वरूप समजवाने अर्थे कह्यो छे. अनादि स्वप्न दशाने लीधे उत्पन्न थयेलो एवो जीवनो अहंभाव-ममत्वभाव ते निवृत्त थवाने अर्थे आ छ पदनी ज्ञानी पुरूषोए देशना प्रकाशी छे. ते स्वप्नदशाथी रहित मात्र पोतानुं स्वरूप छे, एम जो जीव परिणाम करे, तो सहज मात्रमां ते जागृत थई सम्यक्दर्शनने प्राप्त थाय; सम्यक्दर्शनने प्राप्त थई स्वस्वभाव रूप मोक्षने पामे. कोई विनाशी, अशुद्ध अने अन्य एवा भावने विषे तेने हर्ष, शोक, संयोग, उत्पन्न न थाय. ते विचारे स्व-

स्वरूपने विषे ज शुद्धपणुं, संपूर्णपणुं, अविनाशीपणुं अत्यं
आनन्दपणुं, अन्तररहित तेना अनुभवमां आवे छे. स
विभाव पर्यायमां मात्र पोताने अध्यासथी ऐक्यता थ
छे तेथी केवल पोतानुं भिन्नपणुं ज छे, एम स्पष्ट-प्रत्यक्ष
अत्यन्त प्रत्यक्ष अपरोक्ष तेने अनुभव थाय छे. विनाशी
अथवा अन्य पदार्थना संयोगने विषे तेने ईष्ट-अनिष्टपण
प्राप्त थतुं नथी. जन्म, जरा, मरण, रोगादि बाध
रहित संपूर्ण महात्म्यनुं ठेकाणुं एवुं निजस्वरूप जाणी
वेदी ते कृतार्थ थाय छे. जे जे पुरूषोने ए छ प
सप्रमाण एवा परम पुरूषनां वचने आत्मानो निश्चय
थयो छे. ते ते पुरूषो सर्व स्वरूपने पाम्या छे; आधि
व्याधि सर्व संगथी रहित थाय छे; अने भावि काळम
पण तेम ज थशे.

सद्गुरू भक्ति रहस्य

जे सत्यपुरूषोए जन्म, जरा, मरणनो नाश करवा
वाळो स्वस्वरूपमां सहज अवस्थान थवानो उपदेश
कह्यो छे ते सत्पुरूषोने अत्यन्त भक्तिथी नमस्कार
छे, तेनी निष्कारण करूणाने नित्य प्रत्ये निरन्तर
स्तववामां पण आत्मस्वभाव प्रगटे छे, एवा सर्व

सत्पुरूषो, तेना चरणारविंद सदाय हृदय विषे स्थापन रहो !

जे छ पदथी सिद्ध छे एवुं आत्मस्वरूप ते जेना वचने अंगीकार कर्ये सहजमां प्रगटे छे, जे आत्मस्वरूप प्रगटवाथी सर्व काल जीव संपूर्ण आनंदने प्राप्त थई निर्भय थाय छे, ते वचनना कहेनार एवा सत्पुरूषना गुणनी व्याख्या करवाने अशक्ति छे, केम के जेनो प्रत्युपकार न थई शके एवो परमातमभाव ते जेणे कंई पण ईच्छा विना मात्र निष्कारण करूणाशीलताथी आप्यो, एम छतां पण जेणे अन्य जीवने विषे आ मारो शिष्य छे, अथवा भक्तिनो कर्ता छे, माटे मारो छे, एम कदी जोयुं नथी, एवा जे सत्पुरूष तेनें अत्यंत भक्तिए फरी फरी नमस्कार हो !

जे सत्पुरूषोए सद्गुरूनी भक्ति निरूपण करी छे, ते भक्ति मात्र शिष्यना कल्याणने अर्थे कही छे, जे भक्तिने प्राप्त थवाथी सद्गुरूना आतमानी चेष्टाने विषे वृति रहे, अपूर्व गुण दृष्टिगोचर थई अन्य स्वच्छंद मटे, अने सहजे आतमबोध थाय एम जाणीने जे भक्तिनुं निरूपण कर्युं छे, ते भक्तिने अने ते सत्पुरूषने फरी फरी त्रिकाल नमस्कार हो !

जो कदी प्रगटपणे वर्तमानमां केवलज्ञाननी उत्पत्ति थई नथी, पण जेना वचनना विचारयोगे शक्तिपणे केवलज्ञान छे एम स्पष्ट जाण्युं छे, श्रद्धापणे केवलज्ञान थयुं छे, विचार दशाए केवल ज्ञान थयुं छे, ईच्छा दशाए केवलज्ञान थयुं छे, मुख्य नयना हेतु थी केवल ज्ञान वर्ते छे. ते केवल ज्ञान सर्व अव्याबाध सुखनुं प्रगट करनार, जेना योगे सहजमात्रमां जीव पामवा योग्य थयो, ते सत्पुरूषना उपकारने सर्वोत्कृष्ट भक्तिए नमस्कार हो ! नमस्कार हो !

धर्मनिष्ठा

वीतरागनो कहेलो परम शांत रसमय धर्म पूर्ण सत्य छें, एवो निश्चय राखवो, जीवना अनअधिकारीपणाने लीधे तथा सत्पुरूषना योग विना समजातुं नथी; तो पण तेना जेवुं जीवने संसार-रोग मटाडवा ने बीजुं कोई पूर्ण हितकारी औषध नथी, एवुं वारंवार चिंतवन करवुं.

आ परम तत्त्व छे, तेनो मने सदाय निश्चय रहो; ए यथार्थ स्वरूप मारा हृदयने विषे प्रकाश करो, अने जन्मादि बंधन थी अत्यन्त निवृत्ति आओ! निवृत्ति थाओ !!

हे जीव ! आ क्लेश रूप संसार थकी विराम पाम, विराम पाम; कांईक विचार, प्रमाद छोड़ी जागृत था ! जागृत था !! नहीं तो रत्नचिंतामणि जेवो आ मनुष्य देह निष्फल जशे !

हे जीव ! हवे तारे सत्पुरूषनी आज्ञा निश्चय उपासवा योग्य छे.

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

सप्तदोष परिहार

हे काम ! हे मान ! हे संगउदय !
हे वचनवर्गणा ! हे मोह ! हे मोहदया !
हे शिथिलता ! तमे शा माटे अंतराय करो छो?
परम अनुग्रह करीने हवे अनुकूल थाओ ! अनुकूल थाओ !!

श्री आत्मसिद्धि शास्त्र

जे स्वरूप समज्या विना, पाम्यो दुःख अनंत;
समजाव्यु ते पद नमु, श्री सद्गुरूभगवंत. १.

वर्तमान आ कालमां, मोक्षमार्ग बहु लोप;
विचारवा आत्मार्थीने, भाख्यो अत्र अगोप्य. २.

कोई क्रिया-जड थई रह्या, शूष्क ज्ञानमां कोई;
माने मारग मोक्षनो, करूणा उपजे जोई. ३.

बाह्य क्रियामां राचतां, अंतर्भेद न कांई;
ज्ञानमार्ग निषेधतां, तेह क्रियाजड आंही. ४.

बंध मोक्ष छे कल्पना, भाखे वाणी मांही;
वर्ते मोहावेशमां, शूष्क ज्ञानी ते आंही. ५.

वैराग्यादि सफल तो, जो सह आत्मज्ञान;
तेमज आत्मज्ञाननी, प्राप्तितणां निदान. ६.

त्याग-विराग न चित्तमां, थाय न तेने ज्ञान;
अटके त्याग विरागमां, तो भूले निज भान. ७.

ज्यां ज्यां जे जे योग्य छे, तहां समझवुं तेह;
त्यां त्यां ते ते आचरे, आत्मार्थी जन अेह. ८.

सेवे सद्गुरूचरणने, त्यागी दई निजपक्ष;
पामे ते परमार्थने, निजपदनो ले लक्ष. ९.

आत्मज्ञान समदर्शिता, विचरे उदय प्रयोग;
अपूर्व वाणी परमश्रुत, सद्गुरू लक्षण योग्य. १०.

प्रत्यक्षसद्गुरू सम नहीं, परोक्ष जिन उपकार;
अेवो लक्ष थया विना, उगे न आत्मविचार ११.

सद्गुरुना उपदेश वण, समजाय न जिन रूप;
समज्या वण उपकार शो ? समज्ये जिनस्वरूप. १२.

आत्मादि अस्तित्वनां. जेह निरूपक शास्त्र;
प्रत्यक्ष सद्गुरु योग नहीं, त्यां आधार सुपात्र. १३

अथवा सद्गुरूअे कह्यां, जे अवगाहन काज;
ते ते नित्य विचारवां, करी मतांतर त्याज. १४.

रोके जीव स्वच्छंद तो, पामे अवश्य मोक्ष;
पाम्या अेम अनंत छे भाख्युं जिन निर्दोष १५.

प्रत्यक्ष सद्गुरू-योग थी, स्वच्छंद ते रोकाय;
अन्य उपाय कर्या थकी, प्राये बमणो थाय. १६.

स्वच्छंद मत आग्रह तजी, वर्ते सद्गुरू लक्ष;
समकित तेने भाखियुं, कारण गणी प्रत्यक्ष. १७.

मानादिक शत्रु महा, निज छंदे न मराय.
जातां सद्गुरू शरणमां, अल्प प्रयासे जाय. १८.

जे सद्गुरू उपदेशथी, पाम्यो केवल ज्ञान;
गुरू रह्या छद्मस्थ पण, विनय करे भगवान १९.

अेवो मार्ग विनय तणो, भाख्यो श्री वीतराग;
मूल हेतु ए मार्गनो, समजे कोई सुभाग्य. २०.

असद्गुरू अे विनयनो, लाभ लहे जो कांई;
महामोहनीय कर्मथी, बूडे भवजल मांही; २१.

होय मुमुक्षु जीव ते, समजे एह विचार;
होय मतार्थी जीव ते, अवळो ले निर्धार. २२.
होय मतार्थी तेहने, थाय न आत्म लक्ष;
तेह मतार्थी लक्षणो, अहीं कह्यां निर्पक्ष. २३.

मतार्थी लक्षण

बाह्य त्याग पण ज्ञान नहीं, ते माने गुरू सत्य;
अथवा निज कुलधर्मना, ते गुरूमां ज ममत्व. २४.
जे जिन देहप्रमाण ने, समवसरणादि सिद्धि;
वर्णन समजे जिननुं, रोकी रहे निज बुद्धि. २५.
प्रत्यक्ष सद्गुरूयोगमां, वर्ते दृष्टि विमुख;
असद्गुरूने दृढ करे, निजमानार्थे मुख्य. २६.
देवादि गति भंगमां, जे समजे श्रुतज्ञान;
माने निजमतवेषनो, आग्रह मुक्तिनिदान. २७.
लह्युं स्वरूप न वृत्तिनुं, ग्रह्युं व्रत-अभिमान;
ग्रहे नहीं परमार्थने, लेवा लौकिक मान. २८.
अथवा निश्चय नय ग्रहे, मात्र शब्दनी मांय;
लोपे सद् व्यवहारने, साधन रहित थाय. २९.
ज्ञान दशा पामे नहीं, साधन दशा न कांई;
पामे तेनो संग जे, ते बूडे भव मांही. ३०.

े पण जीव मतार्थमां, निज मानादि काज;
ामे नहि परमार्थ ने, अन्-अधिकारी मां ज. ३१
नहि कषाय उपशांतता, नहि अन्तर वैराग्य;
सरलपणुं न मध्यस्थता, अे मतार्थी दुर्भाग्य. ३२
लक्षण कह्यां मतार्थीनां, मतार्थ जावा काज;
हवे कहुं आत्मार्थीनां, आत्म अर्थ सुख साज. ३३

आत्मार्थी लक्षण

आत्मज्ञान त्यां मुनिपणुं, ते साचा गुरू होय;
बाकी कुलगुरू कल्पना, आत्मार्थी नहि जोय. ३४
प्रत्यक्ष सद्‌गुरू प्राप्तिनो, गणे परम उपकार;
त्रणे योग अेकत्व थी, वर्ते आज्ञाधार. ३५
अेक होय त्रण कालमां, परमारथनो पंथ;
प्रेरे ते परमार्थने, ते व्यवहार समंत. ३६
अेम विचारी अंतरे, शोधे सद्‌गुरू योग;
काम अेक आत्मार्थनुं, बीजो नहि मनरोग. ३७
कषायनी उपशांतता, मात्र मोक्ष अभिलाष;
भवे खेद, प्राणीदया, त्यां आत्मार्थ निवास. ३८
दशा न अेवी ज्यां सुधी, जीव लहे नहि जोग;
मोक्षमार्ग पामे नहीं, मटे न अन्तर रोग. ३९

आवे ज्यां अेवी दशा, सद्गुरू बोध सुहाय;
ते बोधे सुविचारणा, त्यां प्रगटे सुखदाय. ४०

ज्यां प्रगटे सुविचारणा, त्यां प्रगटे निजज्ञान;
जे ज्ञाने क्षय मोह थई, पामे पद निर्वाण. ४१

उपजे ते सुविचारणा, मोक्षमार्ग समजाय;
गुरू शिष्य संवाद थी, भांखुं षट्पद आंहि. ४२

षट्पदनामकथन

'आत्मा छे,' 'ते नित्य छे,' 'छे कर्त्ता निजकर्म;'
'छे भोक्ता' वली 'मोक्ष छे,' 'मोक्ष उपाय सुधर्म.' ४३

षट् स्थानक संक्षेपमां, षट् दर्शन पण तेह;
समजावा परमार्थने कह्यां ज्ञानीअे अेह. ४४

शंका - शिष्य उवाच

नथी दृष्टिमां आवतो, नथी जणातुं रूप;
बीजो पण अनुभव नहीं, तेथी न जीवस्वरूप. ४५

अथवा देह ज आत्मा, अथवा इंद्रिय प्राण;
मिथ्या जुदो मानवो; नहीं जुदुं अेंधाण. ४६

वली जो आत्मा होय तो, जणाय ते नहि केम?
जणाय जो ते होय तो, घट पट आदि जेम. ४७

माटे छे नहि आतमा, मिथ्या मोक्ष उपाय;
अे अंतर शंका-तणो, समजावो सदुपाय. ४८

समाधान-सद्गुरू उवाच

भास्यो देहाध्यासथी, आत्मा देह समान;
पण ते बन्ने भिन्न छे, प्रगट लक्षणे भान. ४९

भास्यो देहाध्यासथी, आत्मा देह समान;
पण ते बन्ने भिन्न छे, जेम असि ने म्यान. ५०

जे दृष्टा छे दृष्टिनो, जे जाणे छे रूप;
अबाध्य अनुभव जे रहे, ते छे जीवस्वरूप. ५१

छे इन्द्रिय प्रत्येक ने, निज निज विषयनुं ज्ञान;
पांच इन्द्रियना विषयनुं, पण आत्माने भान. ५२

देह न जाणे तेहनें, जाणे न इन्द्रिय प्राण;
आत्मानी सत्ता वडे, तेह प्रवर्ते जाण. ५३

सर्व अवस्थाने विषे, न्यारो सदा जणाय;
प्रगटरूप चैतन्यमय, अे अेंधाण सदाय. ५४

घट, पट आदि जाण तुं, तेथी तेने मान;
जाणनार ते मान नहिं, कहिये केवुं ज्ञान? ५५

परम बुद्धि कृष देहमां, स्थूल देह मति अल्प;
देह होय जो आतमा, घटे न आम विकल्प.

जड़ चेतननो भिन्न छे, केवल प्रगट स्वभाव;
अेकपणुं पामे नहि, त्रणेकाल द्वयभाव. ५

आत्मानी शंका करे, आत्मा पोते आप;
शंकानो करनार ते अचरज अेह अमाप. ५

शंका - शिष्य उवाच

५

आत्माना अस्तित्वना, आपे कह्या प्रकार;
संभव तेनो थाय छे, अंतर कर्ये विचार. ५

बीजी शंका थाय त्यां, आत्मा नहि अविनाश;
देहयोगथी उपजे, देह वियोगे नाश. ६

अथवा वस्तु क्षणिक छे, क्षणे क्षणे पलटाय;
अे अनुभवथी पण नहीं आत्मा नित्य जणाय. ६



समाधान - सद्गुरु उवाच

देह मात्र संयोग छे, वली जड रूपी दृश्य;
चेतननां उत्पत्ति लय, कोना अनुभव वश्य? ६२

जेना अनुभव वश्य ओ, उत्पन्न-लयनुं ज्ञान; ६३
ते तेथी जुदा विना, थाय न केमे भान.
जे संयोगो देखीये, ते ते अनुभव द्रश्य; ६४
उपजे नहि संयोग थी, आत्मा नित्य प्रत्यक्ष.
जडथी चेतन उपजे, चेतनथी जड थाय; ६५
ओवो अनुभव कोईने, क्यारे कदी न थाय.
कोई संयोगोथी नहीं, जेनी उत्पत्ति थाय; ६६
नाश न तेनो कोईमां, तेथी नित्य सदाय.
क्रोधादि तरतम्यता, सर्पादिकनी मांय; ६७
पूर्व जन्म संस्कार ते, जीव नित्यता त्यांय;
आत्मा द्रव्ये नित्य छे, पर्याये पलटाय; ६८
बाळादि वय त्रण्यनुं, ज्ञान ओकने थाय.
अथवा ज्ञान क्षणिकनुं, जे जाणी वदनार; ६९
वदनारो ते क्षणिक नहि, कर अनुभव निर्धार.
क्यारे कोई वस्तुनो, केवल होय न नाश; ७०
चेतन पामे नाश तो, केमां भळे तपास

शंका - शिष्य उवाच

कर्ता जीव न कर्मनो, कर्म ज कर्त्ता कर्म;
अथवा सहज स्वभाव कां, कर्म जीवनो धर्म. ७१

आत्मा सदा असंग ने, करे प्रकृति बंध;
अथवा ईश्वर प्रेंरणा, तेथी जीव अबंध.

माटे मोक्ष उपायनो, कोई न हेतु जणाय; ७
कर्मतणुं कर्त्तापणुं, कां नहि कां नहि जाय.

७

समाधान - सद्‌गुरू उवाच

होय न चेतन प्रेरणा. कोण ग्रहे तो कर्म;
जड-स्वभाव नहि प्रेरणा, जुओ विचारी धर्म. ७

जो चेतन करतुं नथी, थतां नथी तो कर्म
तेथी सहज स्वभाव नहि, तेम ज नहीं जीव धर्म. ७

केवल होत असंग जो, भासत तने न केम ?
असंग छे परमार्थथी, पण निजभाने तेम. ७

कर्त्ता ईश्वर कोई नहि, ईश्वर शुद्ध स्वभाव;
अथवा प्रेरक ते गण्ये, ईश्वर दोषप्रभाव. ७

चेतन जो निज भानमां, कर्त्ता आप स्वभाव;
वर्ते नहि निजभानमां, कर्त्ता कर्म प्रभाव. ७८

शंका—शिष्य उवाच

जीव कर्म कर्ता कहो, पण भोक्ता नहि सोय,
शुं समजे जड कर्म के, फल परिणामी होय; ७९

फलदाता ईश्वर गण्ये, भोक्तापणुं सधाय, ८०
अेम कह्यो ईश्वरतणुं, ईश्वरपणुं ज जाय

ईश्वर सिद्ध थया विना, जगत नियम नहि होय, ८१
पछी शुभाशुभ कर्मनां, भोग्यस्थान नहि कोय.

समाधान - सद्‌गुरू उवाच

भाव कर्म निज कल्पना, माटे चेतन रूप, ८२
जीव वीर्यनी स्फुरणा, ग्रहण करे जड धूप,

झेर सुधा समजे नहीं, जीव खाय फल थाय, ८३
अेम शुभाशुभ कर्मनुं भोक्तापणुं जणाय.

एक रांक ने एक नृप, ए आदि जे भेद, ८४
कारण विना न कार्य ते, अेज शुभाशुभ वेद्य.

फलदाता ईश्वर तणी एमां नथी जरूर ८५
कर्म स्वभावे परिणमे थाय भोगथी दूर.

ते ते भोग्यविशेषनां, स्थानक द्रव्य स्वभाव ८६
गहन वात छे शिष्य आ कही संक्षेपे साव.

शंका - शिष्य उवाच

कर्त्ता भोक्ता जीव हो पण तेनो नहि मोक्ष;
वीत्यो काल अनंत पण वर्तमान छे दोष. ८७



[illegible]
[illegible] ৯৫
[illegible]
[illegible] ৯৬

[illegible]

[illegible]
[illegible] ৯৭
[illegible]
[illegible] ৯৮
[illegible]
[illegible] ৯৯
[illegible]
[illegible] ১০০
[illegible]
[illegible] ১০১
[illegible]
[illegible] ১০২
[illegible]
[illegible] ১০৩

કર્મબંધ ક્રોધાદિ થી, હણે ક્ષમાદિક તેહ;
પ્રત્યક્ષ અનુભવ સર્વને, એમાં શો સંદેહ?

છોડી મત દર્શન તણો, આગ્રહ તેમ વિકલ્પ;
કહ્યો માર્ગ આ સાધશે, જન્મ તેહના અલ્પ.

ષટ્પદના ષટ્પ્રશ્ન તે, પૂછ્યા કરી વિચાર;
તે પદની સર્વાંગતા, મોક્ષમાર્ગ નિર્ધાર.

જાતિ, વેષનો ભેદ નહિ, કહ્યો માર્ગ જો હોય;
સાધે તે મુક્તિ લહે, એમાં ભેદ ન કોય.

કષાયની ઉપશાંતતા, માત્ર મોક્ષ અભિલાષ;
ભવે ખેદ, અંતર દયા, તે કહિયે જિજ્ઞાસ.

તે જિજ્ઞાસુ જીવને, થાય સદ્ગુરુ બોધ;
તો પામે સમકિતને, વર્તે અંતર શોધ.

મત દર્શન આગ્રહ તજી, વર્તે સદ્ગુરુ લક્ષ;
લહે શુદ્ધ સમકિત તે, જેમાં ભેદ ન પક્ષ.

વર્તે નિજ સ્વભાવનો, અનુભવ લક્ષ પ્રતીત;
વૃત્તિ વહે નિજભાવમાં, પરમાર્થે સમકિત.

વર્ધમાન સમકિત થઈ, ટાળે મિથ્યાભાસ;
ઉદય થાય ચરિત્રનો, વીતરાગ પદ વાસ.

કેવળ નિજસ્વભાવનું, અખંડ વર્તે જ્ઞાન;
કહિયે કેવળ જ્ઞાન તે, દેહ છતાં નિર્વાણ.

कोटि वर्षनुं स्वप्न पण, जाग्रत थतां समाय;
तेम विभाव अनादिनो, ज्ञान थतां दूर थाय. ११४

छूटे देहाध्यास तो, नहि कर्त्ता तुं कर्म;
नहि भोक्ता तुं तेहनो, अे ज धर्म नो मर्म. ११५

अे ज धर्मथी मोक्ष छे, तुं छो मोक्षस्वरूप;
अनंत दर्शन ज्ञान तुं, अव्याबाध स्वरूप. ११६

शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन, स्वयंज्योति सुखधाम;
बीजुं कहिये केटलुं, कर विचार तो पाम. ११७

निश्चय सर्वे ज्ञानीनो, आवी अत्र समाय;
धरी मौनता अेम कहि, सहजसमाधिमांय. ११८

शिष्य बोध बीज प्राप्ति

सद्गुरुना उपदेशथी, आव्युं अपूर्व भान;
निजपद निजमांही लह्युं, दूर थयुं अज्ञान. ११९

भास्युं निजस्वरूप ते, शुद्ध चेतना रूप;
अजर अमर अविनाशी ने, देहातीत स्वरूप. १२०

कर्त्ता भोक्ता कर्मनो, विभाव वर्ते ज्यांय;
वृत्ति वही निजभावमां, थयो अकर्त्ता त्यांय. १२१

अथवा निज परिणाम जे, शुद्ध चेतनारूप;
कर्त्ता भोक्ता तेहनो, निर्विकल्प स्वरूप. १२२

मोक्ष कह्यो निजशुद्धता, ते पामे ते पंथ;
समजाव्यो संक्षेपमां, सकल मार्ग निर्ग्रंथ. १

अहो! अहो! श्री सद्गुरु, करुणासिंधु अपार;
आ पामर पर प्रभु कर्यो, अहो! अहो! उपकार १

शुं प्रभु चरण कने धरुं, आत्माथी सौ हीन;
ते तो प्रभुअे आपियो, वर्तुं चरणाधीन. १

आ देहादि आजथी, वर्तो प्रभु आधीन;
दास, दास, हुं दास छुं, तेह प्रभुनो दीन. १२

षट् स्थानक समजावीने, भिन्न बताव्यो आप;
म्यानथकी तरवारवत्, अे उपकार अमाप. १२

उपसंहार

दर्शन षटे समाय छे, आ षट् स्थानकमांही;
विचारतां विस्तारथी, संशय रहे न कांई. १२

आत्म भ्रान्ति सम रोग नहीं, सद्गुरू वैद्य सुजाण;
गुरु आज्ञा सम पथ्य नहि, औषध विचार ध्यान. १२

जो ईच्छो परमार्थ तो, करो सत्य पुरुषार्थ;
भवस्थिति आदि नाम लई, छेदो नहि आत्मार्थ १३०

निश्चयवाणी सांभळी, साधन तजवां, नोय;
निश्चय राखी लक्षमां, साधन करवां सोय. १३१

नय निश्चय अेकांतथी, आमां नथी कहेल;
अेकाते व्यवहार नहि, बन्ने साथ रहेल. १३२

गच्छमतनी जे कल्पना, ते नहि सद्‌व्यवहार;
भान नहि निजरूपनुं, ते निश्चय नहि सार. १३३

आगळ ज्ञानी थई गया, वर्तमानमां होय;
थाशे काळ भविष्यमां, मार्गभेद नहि कोय. १३४

सर्व जीव छे सिद्धसम; जे समजे ते थाय;
सद्‌गुरू आज्ञा जिनदशा; निमित्त कारण मांय. १३५

उपादाननुं नाम लई, अे जे तजे निमित्त;
पामे नहि सिद्धत्वने, रहे भ्रांतिमां स्थित. १३६

मुखथी ज्ञान कथे अने; अंतर छूटयो न मोह;
ते पामर प्राणी करे, मात्र ज्ञानीनो द्रोह. १३७

दया, शांति, समता, क्षमा, सत्य, त्याग वैराग्य;
होय मुमुक्षु घट विषे, अेह सदाय सुजाग्य. १३८

मोहभाव क्षय होय ज्यां, अथवा होय प्रशांत;
ते कहिये ज्ञानीदशा, बाकी कहिये भ्रांत. १३९

सकल जगत ते अेठवत, अथवा स्वप्न समान;
ते कहीये ज्ञानीदशा, बाकी वाचाज्ञान. १४०

स्थानक पांच विचारीने, छठ्ठे वर्ते जेह;
पामे स्थानक पांचमुं, ऐमा नहि संदेह. १४१

देह छतां जेनी दशा, वर्ते देहातीत;
ते ज्ञानीनां चरणमां, हो वंदन अगणित. १४

श्री नडियाद, आ. वद १ गुरू. १९

परम पुरूष प्रभु सद्गुरू, परम ज्ञान सुखधाम,
जेणे आप्युं भान निज, तेने सदा प्रणाम.



श्री लालाजी रणजीतसिंहजीकृत
श्री बृहद् आलोचना

दोहा

सिद्ध श्री परमात्मा, अरिगंजन अरिहंत;
इष्टदेव वदु सदा, भयभंजन भगवंत. १

अरिहा सिद्ध समरु सदा, आचारज उवज्झाय;
साधु सकलके चरनकुं, बंदु शीश नमाय. २

शासननायक समरिअे, भगवंत वीर जिनंद;
*आलिय विघन दूरे हरे, आपे परमानन्द ३

अंगुठे अमृत वसे, लब्धितणा भंडार;
श्रीगुरु गौतम, समरिये, वांछित फल दातार. ४

श्री गुरुदेव प्रसाद से, होत मनोरथ सिद्ध;
घन वरसत वेली तरु, फूल फलन की बृद्ध. ५

पंच परमेष्ठी देव को, भजन पूर पहिचान;
कर्म अरि भाजे सबी, होवे परम कल्यान. ६

श्री जिनयुगपदकमलमें, मुझ मन भ्रमर बसाय;
कब उगे वो दिनकरुं, श्रीसुख दरिसन पाय. ७

---

* अनिष्ट,

प्रणमी पदपंकज भणी, अरिगंजन अरिहंत.
कथन करों अब जीवको, किंचित् मुज विरतंत.[1]
आरंभ विषय कषाय वश, भमियो काल अनंत
लक्ष चोरासी योनीसे, अब तारो भगवंत
देव गुरु धर्म सूत्रमें, नव तत्त्वादिक जोय;
अधिका ओछा जे कह्या, मिथ्या दुष्कृत मोय[2].
मिथ्या मोह अज्ञानको, भरियो रोग अथाग;
वैद्यराज गुरु शरणथी, औषधज्ञान विराग.
जे में जीव विराधिया, सेव्यां पाप अढार;
प्रभु तुम्हारी साखसें, वारंवार धिक्कार.
बुरा बुरा सबको कहे, बुरा न दीसे कोई;
जो घट शोधे आपनो, मोसु बुरा न कोई.
कहेवामां आवे नहि, अवगुण भर्या अनंत;
लिखवामाँ क्यु कर लिखुं, जाणो श्री भगवंत.
करूणानिधि कृपा करी, कर्म कठिन मुझ छेद;
मिथ्या मोह अज्ञान को, करजो ग्रंथी भेद.
पतित उद्धारन नाथजी, अपनो बिरुद विचार;
भूलचूक सब माहरी, खमीअे वारंवार.

---

1 वृत्तांत, वर्णन, 2 'मारां माठां काम निष्फल थाओ'

माफ करो सब माहरा आज तलकना दोष;
दीनदयालु दो मुझे श्रद्धा शील संतोष. १७
आतम निंदा शुध्ध भनी गुनवंत वंदन भाव;
राग द्वेष पतला करी, सबसे खीमत खिमाव[1]. १८
छूटुं पिछला पाप से, नवां न बांधु कोई;
श्री गुरुदेवप्रसादसे, सफल मनोरथ होई. १९
परिग्रह ममता तजी करी, पंच महाव्रत धार;
अंत समय आलोचना, करूं संथारो सार. २०
तीन मनोरथ अे कह्या, जो ध्यावे नित मन्न;
शक्तिसार[2] वर्ते सही, पावे शिवसुख धन्न. २१
अरिहा देव, निर्ग्रंथ गुरू, संवर निर्जर धर्म;
आगम श्री केवलि कथित, अेही जैन मत मर्म. २२
आरंभ विषय कषाय तज, शुद्ध समकित व्रत धार;
जिन आज्ञा परमान कर, निश्चय खेवो[3] पार. २३
क्षण निकमो रहनो नहि, करनो आतम काम;
भणनो गुणनो शीखनो, रमनो ज्ञानाराम. २४
अरिहा सिध्ध सब साधुजी, जिनाज्ञा धर्मसार;
मंगलिक उत्तम सदा, निश्चय शरणां चार. २५
घडी घडी पलपल सदा, प्रभु स्मरण को चाव;[4]
नरभव सफलो जो करे, दान शील तप भाव. २६

१ क्षमी क्षमावी २ अनुसार, प्रमाणे ३ उतरो ४ उत्साह

कल्पवृक्ष, चिंतामणी, इन भवमें सुखकार;
ज्ञानवृद्धि इनसे अधिक, भव दुःख भंजनहार.
राई मात्र घटवध नहीं, देख्यां केवलज्ञान;
यह निश्चय कर जानके; त्यजीये परथम[1] ध्यान.
दूजा[2] कुछ भी न चिंतीओ, कर्म बंध बहु दोष;
त्रीजा[3] चौथा[4] ध्याय के, करीओ मन संतोष. २
गई वस्तु सोचे नहि, आगम वांछा नांही;
वर्तमान वर्ते सदा, सो ज्ञानी जग मांही. २
अहो! समदृष्टि आतमा, करे कुटुम्ब प्रतिपाल;
अंतर्गत न्यारो रहे, (ज्युं) धाव खिलावे बाल. २२
सुख दुख दोनु वसत है, ज्ञानी के घट मांही;
गिरि[5] सर दीसे मुकरमे[6], भार भींजवो नांही. २३
जो[7] जो पुद्‌गलफरसना, निश्चे फरसे सोय;
ममता समता भाव से, कर्म बंधन क्षय होय. २४
बांध्यां सोही भोगवे, कर्म[8] शुभाशुभ भाव;
फल निरजरा होत है, यह समाधि चित चाव. २५

---

१ आर्त-:दुख रूप परिणाम २ रौद्र पाप-रूप परिणाम ३ धर्म शुभ रूप परिणाम ४ शुक्ल शुद्ध परिणाम ५ पर्वत, सरोवर ६ अरीसामां ७ जे जे पुद्‌गलोनो स्पर्श थवानो छे, तेमाँ ममता भावथी कर्मबंध अने समता भावथी कर्म क्षय थाय छे. ८ बांधेला कर्म भोगवतां शुभाशुभ भावथो फल थाय छे. समभावमां चित होय तो निर्जरा थाय छे.

बांध्या बिन भुगते नहीं, बिन भुगत्यां[1] न छूटाय;
आप ही करता भोगता, आप ही दूर कराय, २६
पथ कुपथ घटवध करी, रोग हानि वृद्धि थाय;
पुण्य पाप किरिया करी, सुख दुःख जग में पाय. २७
सुख दीधे सुख होत है, दुःख दीधा दुःख होय;
आप हणे नहि अवरकुं, (तो) अपने हणे न कोय. २८
ज्ञान गरीबी गुरुवचन, नरम वचन निर्दोष;
इनकुं कभी न छांडिये, श्रद्धा शील संतोष. २९
सत् मत छोडो हो! नरा, लक्ष्मी चौगुनी होय;
सुख दुःख रेखा कर्म की, टाली टले न कोय. ३०
गोधन गजधन रतनधन, कंचन खान सुखान;
जब आवे संतोषधन, सब धन धूल समान. ३१
शील रतन मोहटो रतन, सब रतनां की खान;
तीन लोककी संपदा, रही शील में आन[2]. ३२
शीले सर्प न आभडे[3], शीले शीतल आग;
शीले अरि करि केसरी, भय जावे सब भाग. ३३
शील रतन के पारखुं, मीठा बोले बैन;
सब जगसे ऊंचा रहे[4], नीचा राखे नैन. ३४
तनकर मनकर वचनकर, देत न काहु दुःख;
कर्म रोग पातिक जरे, देखन वाका मुख. ३५

१ भोगव्या बिना २ आवीने ३ अथडाय ४ उदासीन

दोहा

पान खरंतां इस कहे, सुन तरुवर वनराय;
अबके[1] विछुरे कब मिले, दूर पडेंगे जाय.
तब तरुवर उत्तर दीयो, सुनो पत्र एक बात;
इस घर अैसी रीत है, एक आवत अेक जात.
वरस[2] दिना की गांठको, उत्सव गाय बजाय;
मूरख नर समझे नहीं, वरस गांठको जाय(खाय).

सोरठो

पवन[3] तणो विश्वास, किण कारण तें दृढ कियो?
इनकी अेही रीत, आवे के आवे नहीं.

दोहा

करज बिराना[4] काढके, खरच किया बहुनाम;
जब मुदत पूरी हुवे, देना पडशे दाम.
बिनु दियां छूटे नहि, यह निश्चय कर मान;
हस हसके क्यु खरचीअे, दाम बिराना जान.

---

१ हमणां छूटां पडेला क्यारे मलीशुं ? २ वर्षगांठनो दिवस उजवे छे. ३. वा, श्वासोश्वास ४ पारकां व्याजे लावी.

जीव हिंसा करतां थकां, लागे मिष्ट अज्ञान[1] ;
ज्ञानी इम जाने सही, विष मिलियो पकवान. ३

काम भोग प्यारा लगे, फल किंपाक[2] समान ;
मीठी खाज खुजावतां, पीछे दुःख की खान. ४

जप तप संयम दोहिलो, औषध कडवी जान ;
सुखकारक पीछे घनो, निश्चय पद निरवान. ५

डाभ अणी जल बिंदुओ, सुख विषयन को चाव ;
भवसागर दुःखजलभर्यो, यह संसारस्वभाव. ६

चढ उत्तंग जहांसे पतन, शिखर नहीं वो कूप ;
जिस सुख अंदर दुःख बसे, सो सुख भी दुःख रूप. ७

जब लग जिनके पुण्य का, पहोंचे नहि करार[3] ;
तब लग उसको माफ है, अवगुन करे हजार. ८

पुण्य खीन जब होत है, उदय होत है पाप;
दाजे वनकी लाकरी, प्रजले आपोआप. ९

पाप छिपायां ना छिपे, छीपे तो महाभाग;
दाबी डूबी ना रहे, रूई लपेटी आग. १०

बहु वीती थोडी रही, अब तो सुरत संभार[4] ;
परभव निश्चय चालनो, वृथा जन्म मत हार. ११

१अज्ञानीने २ झेरीझाडनु नाम ३ मुदत पूरी थई नथी ४ लक्ष

चार कोश ग्रामांतरे, खरची बांधे लार[1] ;
परभव निश्चय जावणो, करीअे धर्म विचार.

रज विरज ऊंची गई, नरमाई के पान[2] ;
पत्थर ठोकर खात है, करडाई के तान[3] . १२

अवगुन उर धरिये नहि, जो होवे विरख बबूल[4] ;
गुन लीजे कालु कहै, नहि छाया में सूल. १३

जैसी जापे वस्तु है, वैसी दे दिखलाय;
वाका बुरा न मानिअे, कहां लेने वो जाय? १४

गुरु कारीगर सारिखा, टांकी[5] वचन विचार;
पत्थर से प्रतिमा करे, पूजा लहे अपार. १५

संतन की सेवा कियां, प्रभु रीझत हैं आप;
जाका बाल खिलाईअे, ताका रीझत बाप. १६

भवसागर संसारमें, दीवा श्री जिनराज;
उद्यम करी प्होंचे तीरे, बैठी धर्म जहाज. १७

निज आतमकुं दमन कर, पर आतमकुं चीन;
परमातमकुं भजन कर, सोई मत परवीन. १८

समजुं शंके[6] पापसे, अणसमजु हरखंत;
वे लूखां वे चीकणां, इणविध कर्म बधंत. १९

२०

१ साथे २ नरमाशपणाथी ३ तन्मयपणूं ४ बावलनुं वृक्ष
५ टांकणारूप वचनगण ६ डरे

समज सार संसारमें, समजु टाले दोष;
समज समज करी जीव ही, गया अनंता मोक्ष. २१
उपशम विषय कषायनो, संवर तीनु योग;
किरिया जतन विवेक से, मिटे कर्म दुःख रोग. २२
रोग मिटे समता वधे, समकित व्रत आराध;
निर्वैरी सब जीव से, पावे मुक्ति समाध. २३

इति भूलचूक मिच्छामि दुक्कडम्,
श्री पंचपरमेष्ठि भगवद्भ्यो नमः ॥

卐

दोहा

अनंत चौवीशी जिन नमुं, सिद्ध अनंता क्रोड;
वर्तमान जिनवर सवे, केवली दो नव कोड.
गणधरादि सब साधुजी, समकित व्रत गणधार,
यथायोग्य वंदन करूं, जिनआज्ञा अनुसार.

प्रणमी पद पंकज भनी, अरिगंजन अरिहंत,
कथन करुं हवे जीवनुं, किंचित मुज विरतंत.



अंजनानी देशी

हुं अपराधी अनादि को, जनम जनम गुना किया भरपूरके,
लूंटियां प्राण छ कायना, सेव्यां पाप अढारां करुर के.

(गद्य मूल हिंदी भाषा में छे तेनुं गुजराती भाषान्तर लीधुं छे.)

आज सुधी आ भवमां, पहेलां संख्याता, असंख्याता अनें अनंता भवमां कुगुरु-कुदेव अने कुधर्मनी सद्दहणा, प्ररूपणा, फरसना सेवनादिक संबंधी पापदोष लाग्या ते सर्वे मिच्छामि दुक्कडं.

अज्ञानपणे, मिथ्यात्वपणे, अव्रतपणे, कषायपणे, अशुभ योगे करी, प्रमाद करी, अपछंद,-अविनीतपणुं में कयुं ते सर्वे मिच्छामि दुक्कडं.

श्री अरिहंत भगवंत वीतराग केवलज्ञानी महा-राजनी, श्री गणधरदेवनी, श्री आचार्यनी, श्री धर्मा-चार्यनी, श्री उपाध्यायनी अंने श्री साधु–साध्वीनी, श्रावक-श्राविकानी, समदृष्टि साधर्मी उत्तम पुरुषोनी, शास्त्रसूत्रपाठनी, अर्थपरमार्थनी, धर्म संबंधी अने सकल पदार्थोनी अविनय, अभक्ति, आशातनादिक करी,

करावी, अनुमोदी; मन, वचन अने कायाअे करी द्रव्यथी, क्षेत्रथी, कालथी अने भावथी सम्यक् प्रकारे विनय, भक्ति, आराधना, पालन, स्पर्शना, सेवनादिक यथायोग्य अनुक्रमे नहीं करी, नहीं करावी, नहीं अनुमोदी, ते मने धिक्कार, धिक्कार वारंवार मिच्छामि दुक्कडं. मारी भूलचूक, अवगुण, अपराध, सर्वे माफ करो, क्षमा करो. हुं मन, वचन कायाअे करी खमावुं छुं.

दोहा

अपराधी गुरू देवको, तीन भुवनको चोर;
ठगु विराणा मालमें, हा हा कर्म कठोर.
कामी, कपटी, लालची, अपछंदा अविनीत,
अविवेकी, क्रोधी, कठिन, महापापी भयभीत.
जे में जीव विराधिया, सेव्यां पाप अढार,
नाथ तम्हारी साखसे, वारंवार धिक्कार.

पहेलुं पाप प्राणातिपात :-

छकाय पणे में छकाय जीवनी विराधना करी; पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय,

बेइंद्रिय, तेइंद्रिय, चौरेंद्रिय, पंचेंद्रिय, संज्ञी, असंज्ञी गर्भज चौदे प्रकारे संमूर्छिम आदि त्रस स्थावर जीवोनी विराधना करी, करावी, अनुमोदी, मन वचन अने कायाओ करी उठतां, बेसतां, सूतां, हालतां, चालतां, शस्त्र, वस्त्र, मकानादिक उपकरणो उठावतां, मूकतां, लेतां, देतां, वर्ततां वर्तावतां, अपडिलेहणा, दुपडिलेहणा संबंधी, अप्रमार्जना, दुःप्रमार्जना, संबंधी अधिकी, ओछी, विपरित पूजना पडिलेहणा संबंधी अने आहार विहारादिक नाना प्रकारना घणा घणा कर्तव्योमां संख्याता असंख्याता अने निगोद, आश्रयी अनंता जीवना जेटला प्राण लूंटया, ते सर्व जीवोनो हुँ पापी अपराधी छुं; निश्चय करी बदलानो देणदार छुं; सर्व जीव मने माफ करो, मारी भूलचूक, अवगुण-अपराध सर्व माफ करो. देवसीय, राईय, पाक्षिक, चौमासी अने सांवत्सरिक संबन्धी वारंवार मिच्छामि दुक्कडं. वारंवार खमावुं छुं. तमे सर्वे क्षमजो.

खामेमि सव्व जीवे, सव्वे जीवा खमन्तु मे।
मित्ती मे सव्व भुअेसु, वैरं मज्झं न केणई ।।

ते दिवस मारो धन्य हशे के जे दिवसे हुँ छअे कायना जीवोना वैर बदलाथी निवृत्ति पामीश, सर्व

चौरासी लाख जीवयोनिने अभयदान दईश. ते दिवस मारो परम कल्याणमय थशे.

बीजुं पाप मृषावाद :-

क्रोधवशे, मानवशे, मायावशे, लोभवशे, हास्ये करी, भयवशे इत्यादिक करी मृषा वचन बोल्यो, निंदा-विकथा करी, कर्कश, कठोर, मार्मिक भाषा बोली इत्यादिक अनेक प्रकारे मृषा, जूठुं बोल्यो, बोलाव्युं बोलता प्रत्ये अनुमोद्युं - ते सर्व मन-वचन-कायाए मिच्छामि दुक्कडं. ते दिवस मारो धन्य हशे के जे दिवसे हुँ सर्वथा प्रकारे मृषावादनो त्याग करीश, ते दिवस मारो परम कल्याणमय थशे.

त्रीजुं पाप अदत्तादान :-

अणदीधी वस्तु चोरी करीने लीधी, विश्वासघात करी थापण ओळवी, परस्त्री, परधन हरण कर्यां ते मोटी चोरी लौकिक विरुद्धनी, तथा अल्प चोरी ते घर सम्बन्धी नाना प्रकारना कर्त्तव्योमां उपयोग सहिते ने उपयोग रहिते चोरी करी, करावी, करता

प्रत्ये अनुमोदी, मन, वचन, कायाअे करी; तथा श्री सम्बन्धी ज्ञान, दर्शन, चारित्र अने तप श्री भगवंत गुरुदेवोनी आज्ञा वगर कर्यां ते मने धिक्कार धिक्कार. वारंवार मिच्छामि दुक्कडं. ते दिवस मारो धन्य हशे के जे दिवसे हुं सर्वथा प्रकारे अदत्तादाननो त्याग करीश, ते मारो परम कल्याणमय दिन थशे.

चोथुं पाप अब्रह्मः-

मैथुन सेववामां मन, वचन अने कायाना योग प्रवर्त्ताव्या, नव वाड सहित ब्रह्मचर्य पाल्युं नहि, नव वाडमां अशुद्धपणे प्रवृत्ति करी, पोते सेव्युं, बीजा पासे सेवराव्युं, सेवनार प्रत्ये भलुं जाण्युं ते मन, वचन, कायाअे करी मने धिक्कार, धिक्कार वारंवार मिच्छामि दुक्कडं. ते दिवस मारो धन्ये हशे के जे दिवसे हुं नव वाड सहित ब्रह्मचर्य-शीलरत्न आराधीश, सर्वथा प्रकारे कामविकारोथी निवर्तीश, ते दिवस मारो परम कल्याणमय थशे.

पाचमुं परिग्रह पापस्थानक :-

सचित परिग्रह ते दास, दासी, द्विपद, चौपद आदि,

मणि पत्थर आदि अनेक प्रकार छे, अने अचित परिग्रह सोनु, रूपु, वस्त्र, आभरण आदि अनेक वस्तु छे, तेनी ममता, मूर्छा, पोतापणुं कयुं; क्षेत्र, घर आदि, नव प्रकारना बाह्य परिग्रह अने चौद प्रकारना अभ्यंतर परिग्रहने धार्यो, धराव्यो, धरता प्रत्ये अनुमोद्यो; तथा रात्रिभोजन, अभक्ष्य, आहारादि संबंधी पाप दोष सेव्या ते मने धिक्कार, धिक्कार वारंवार मिच्छामि दुक्कडं. ते दिवस मारो धन्य हशे जे दिवसे हुँ सर्वथा प्रकारे परिग्रहनो त्याग करी संसारना प्रपंचोथी निवर्तीश. ते दिवस मारो परम कल्याणमय थशे.

छठ्ठुं क्रोध पापस्थानकः-

क्रोध करीने पोताना आत्माने अने परना आत्माने तप्तायमान कर्या, दुःखित कर्या, कषायी कर्या, ते मने धिक्कार, धिक्कार वारंवार मिच्छामि दुक्कडं.

सातमुं मान पापस्थानक :-

मान अेटले अहंभाव सहित त्रण गारव ने आठ मद आदि कर्या ते मने धिक्कार, धिक्कार वारंवार मिच्छामि दुक्कडं.

આઠમું માયા પાપસ્થાનક:-

संसार संबंधी तथा धर्म संबंधी अनेक कर्तव्योमां कपट कर्यु ते मने धिक्कार, धिक्कार वारंवार मिच्छामि दुक्कडं.

नवमुं लोभ पापस्थानक:-

मूर्छाभाव कर्यो, आशा, तृष्णा, वांच्छादि कर्यां ते मने धिक्कार, धिक्कार वारंवार मिच्छामि दुक्कडं.

दशमुं राग पापस्थानक:-

मनगमती वस्तुओमां स्नेह कीधो, ते मने धिक्कार, धिक्कार वारंवार मिच्छामि दुक्कडं.

अग्यारमुं द्वेष पापस्थानक:-

अणगमती वस्तु जोई द्वेष कर्यों, ते मने धिक्कार, धिक्कार वारंवार मिच्छामि दुक्कडं.

बारमुं कलह पापस्थानक-:

अप्रशस्त वचन बोली क्लेश उपजाव्या, ते मने

धिक्कार, धिक्कार, वारंवार मिच्छामि दुक्कडं.

तेरमुं अभ्याख्यान पापस्थानक :-

अछतां आळ दीधां, ते मने धिक्कार, धिक्कार, वारंवार मिच्छामि दुक्कडं.

चौदमुं पैशून्य पापस्थानक :-

परनी चुगली, चाडी करी, ते मने धिक्कार, धिक्कार, वारंवार मिच्छामि दुक्कडं.

पंदरमुं परपरिवाद पापस्थानक :-

बीजाना अवगुण, अवर्णवाद बोल्यो, बोलाव्या, अनुमोद्या, ते मने धिक्कार, धिक्कार, वारंवार मिच्छामि दुक्कडं.

सोलमुं रति अरति पापस्थानक :-

पांच इंद्रियना २३ विषयो, २४० विकारो छे तेमां मनगमतामां राग कर्यो, अणगमतामां द्वेष कर्यो, संयम तप आदिमां अरति करी, करावी, अनुमोदी तथा आरंभादि असंयम प्रमादमां रतिभाव कर्यो,

कराव्यो, अनुमोद्यो, ते मने धिक्कार, धिक्कार, वारंवार मिच्छामि दुक्कडं.

सत्तरमुं मायामृषावाद पापस्थानक :-

कपट सहित झूठुं बोल्यो, ते मने धिक्कार, धिक्कार, वारंवार मिच्छामि दुक्कडं.

अढारमुं मिथ्यादर्शनशल्य पापस्थानक :-

श्री जिनेश्वर देवना मार्गमां शंका कांक्षादिक विपरीत प्ररुपणा करी, करावी, अनुमोदी, ते मने धिक्कार, धिक्कार, वारंवार मिच्छामि दुक्कडं.

अेवं अढार पापस्थानक ते द्रव्यथी, क्षेत्रथी, काळथी, भावथी, जाणतां-अजाणतां, मन-वचन-कायाए करी, सेव्यां, सेवराव्यां, अनुमोद्यां, अर्थे, अनर्थे, धर्म अर्थे, कामवशे, मोहवशे, स्ववशे, परवशे कर्यां, दिवसे के रात्रे, अेकला के समूहमां, सूता वा जागतां आ भवमां, पहेलां संख्यातां, असंख्यातां, अनंता भवोमां परिभ्रमण करताँ आज दिन अद्यक्षण पर्यंत रागद्वेष, विषय–कषाय, आळस, प्रमादादिक पौद्‌गलिक प्रपंच, परगुण-पर्यायने पोताना मानवारूप विकल्पे करी भूल करी, ज्ञानन‍ी विराधना करी, दर्शननी विराधना करी,

चारित्रनी विराधना करी, देशचारित्रनी विराधना करी, तप नी विराधना करी, शुद्ध श्रद्धा-शील, संतोष, क्षमादिक निजस्वरूपनी विराधना करी, उपशम, विवेक, संवर, सामायिक, पोसह, प्रतिक्रमण ध्यान, मौनादि नियम, व्रत पच्चखाण, दान, शील, तपादिनी विराधना करी; परम कल्याणकारी आ बोलोनी आराधना, पालना आदिक मन, वचन अने कायाअे करी नहि, करावी नहि, अनुमोदी नहि ते मने धिक्कार, धिक्कार, वारंवार मिच्छामि दुक्कडं.

छअे आवश्यक सम्यक्प्रकारे विधि-उपयोग सहित आराध्या नहि, पाल्या नहि, स्पर्श्या नहि, विधि उपयोग रहित-निरादरपणे कर्या, परन्तु आदर, सत्कार, भाव-भक्ति सहित नहि कर्या, ज्ञानना चौद, समकितना पांच, बार व्रतना साठ, कर्मादानना पंदर, संलेखनाना पांच, अेवं नव्वाणु अतिचारमां तथा १२४ अतिचार मध्ये तथा साधुना १२५ अतिचार मध्ये तथा बावन अनाचरणना श्रद्धादिकमां विराधनादि जे कोई अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचारादि सेव्या, सेवराव्या, अनुमोद्या, जाणतां, अजाणतां, मन, वचन, कायाए करी ते मने धिक्कार, धिक्कार वारंवार मिच्छामि दुक्कडं.

में जीवने अजीव सद्दह्या, प्ररुप्या, अजीवने जी
सद्दह्या, प्ररुप्या, धर्मने अधर्म अने अधर्म ने धर्म सद्दह
प्ररुप्या, साधुने असाधु अने असाधुने साधु साद्दह्या, प्ररु
तथा उत्तम पुरुष, साधु, मुनिराज, साध्वीजीनी से
भक्ति यथाविधि मानतादिं नहि करी, नहि करा
नहि अनुमोदी तथा असाधुओनी सेवा-भक्ति आ
मानता पक्ष कर्यो, मुक्तिना मार्गमां संसारनो म
यावत् पचीस मिथ्यात्वमांना मिथ्यात्व सेव्य
सेवराव्या, अनुमोद्या, मने करी वचनेकरी काया
करी, पचीस कषाय संबंधी, पचीस क्रिया संबंधी
तेत्रीस आशातना संबंधी ध्यानना ओगणीस दो
वन्दनाना बत्रीस दोष, सामायिकना बत्रीस दो
पोसहना अढार दोष संबंधी मने, वचने, कायाए क
जे कोई पाप दोष लाग्या, लगाव्या, अनुमोद्या, ते म
धिक्कार, धिक्कार, वारंवार मिच्छामि दुक्कडं.

महामोहनीय कर्मबन्धनां त्रीस स्थानकने मन
वचन, कायाए करी सेव्यां, सेवराव्यां, अनुमोद्यां
शीलनी नववाड, आठ प्रवचन मातानी विराधनादि
तथा श्रावकना अेकवीश गुण अने बार व्रतनी विराध
नादि मन, वचन अने कायाअे करी, करावी अनुमोदी
तथा त्रण अशुभ लेश्यानां लक्षणोनी अने बोलोनी

सेवना करी अने त्रण शुभ लेश्यनां लक्षणोनी अने बोलनी विराधना करी, चर्चा, वार्ता, व्याख्यानमां श्री जिनेश्वर देवनो मार्ग लोप्यो, गोपव्यो, नहि मान्यो, अछतानी स्थापना करी प्रवर्त्ताव्यो, छतांनी स्थापना करी नहि अने अछतानी निषेधना करी नहि, छतानी स्थापना अने अछतानें निषेध करवानो नियम कर्यो नहिं, कलुषता करी तथा छ प्रकारे ज्ञानावरणीय बंधना बोल तेमज छ प्रकारना दर्शनावरणीय बंधना बोल यावत् आठ कर्मनी अशुभ प्रकृति बंधना पंचावन कारणे करी; ब्यासी प्रकृति पापोनी बांधी, बंधावी-अनुमोदी, मने करी, वचने करी, कायाओ करी, ते मने धिक्कार, धिक्कार, वारंवार मिच्छामि दुक्कडं.

अेक अेक बोलथी मांडी कोडाकोडी यावत् संख्यात असंख्यात अनंता अनंत बोल पर्यंत में जाणवा योग्य बोलने सम्यक्प्रकारे जाण्या नहि, सद्दह्या-प्ररुप्या नहि तथा विपरीतपणे श्रद्धान आदि करी, करावी, अनुमोदी, मन, वचन कायाओ करी, ते मने धिक्कार, धिक्कार, वारंवार मिच्छामि दुक्कडं.

अेक अेक बोलथी मांडी यावत् अनंता बोलमाँ छांडवा योग्य बोलने छांडया नहि अने ते मन, वचन,

कायाअे करी, सेव्या, सेवराव्या, अनुमोद्या, ते मने धिक्कार, धिक्कार, वारंवार मिच्छामि दुक्कडं.

अेक अेक बोलथी मांडी यावत् अनंतानंत बोलमां आदरवा योग्य बोल आदर्या नहि, आराध्या-पाल्या-स्पर्श्या नहि, विराधना खंडनादिक करी, करावी, अनुमोदी, मन, वचन, कायाअे करी, ते मने धिक्कार, धिक्कार, वारंवार मिच्छामि दुक्कडं.

हे जिनेश्वर वीतराग! आपनी आज्ञा आराधवामां जे जे प्रमाद कर्यो, सम्यक्प्रकारे उद्यम नहि कर्यो, नहि कराव्यो, नहि अनुमोद्यो, मन, वचन, कायाअे करी अथवा अनाज्ञा विषे उद्यम कर्यो, कराव्यो, अनुमोद्यो, अेक अक्षरना अनंतमा भाग मात्र-कोई स्वप्नमात्रमां पण आपनी आज्ञाथी न्यून अधिक, विपरीतपणे प्रवर्त्यो, ते मने धिक्कार, धिक्कार, वारंवार मिच्छामि दुक्कडं.

ते मारो दिवस धन्य हशे के जे दिवसे हुं आपनी आज्ञामां सर्वथा प्रकारे सम्यक्पणे प्रवर्तीश.

दोहा

श्रद्धा अशुद्ध प्ररुपणा, करी फरसना सोय;
अनजाने, पक्षपात में, मिच्छा दुक्कड मोय.

सूत्र अर्थ जानुं नहि, अल्पबुद्धि अनजान;
जिनभाषित सब शास्त्रका, अर्थ पाठ परमान.

देवगुरु धर्म सूत्रकुं, नव तत्त्वादिक जोय;
अधिका ओछां जे कह्या, मिच्छा दुक्कड मोय.

हुँ, मगसेलीओ हो रह्यो, नहीं ज्ञान रसभीज;
गुरु सेवा न करी शकुं, किम मुज कारज सीझ.

जाने देखे जे सुने, देवे, सेवे मोय;
अपराधी उन सबनको, बदला देशुं सोय.

जैन धर्म शुद्ध पायके, बरतुं विषय कषाय;
अेह अचंबा हो रह्या, जलमें लागी लाय.

अेक कनक अरु कामिनी, दो मोटी तरवार;
उठ्यो थो जिन भजनकुं, बिचमें लियो मार.

सवैया

संसार छार तजी फरी, छारनो वेपार करुं;
पहेलांनो लागेलो कीच, धोई कीच बीच फरुं.

तेम महापापी हुं तो, मानुं सुख विषयथी;
करी छे फकीरी अेवी, अमीरीना आशयथी.

दोहा

त्याग न कर संग्रह करुं, विषय वचन जिम आहार;
तुलसी अे मुज पतितकुं, वारंवार धिक्कार.

कामी, कपटी, लालची कठण लोहको दाम;
तुम पारस परसंगथी, सुवरन थाशुं स्वाम.

जप, तप, संवर हीन हुं, वली हुं समता हीन;
करुणानिधि कृपाल हे! शरण राख, हुं दीन.

नहि विद्या नहि वचन बल, नहि धीरज गुणज्ञान;
तुलसीदास गरीबकी, पत राखो भगवान.

आठ कर्म प्रबल करी, भमीओ जीव अनादि;
आठ कर्म छेदन करी, पावे मुक्ति समाधि.

सुसा जैसे अविवेक हुं, आंख मीच अंधियार;
मकडी जाल बिछायके, फंसुं आप धिक्कार.

सब भक्षी जिम अग्नि हुं, तपीओ विषय कषाय;
अवछंदा अविनीत मैं, धर्मी ठग दुःखदाय.

कहा भयो घर छांडके, तज्यो न माया संग,
नाग त्यजी जिम कांचली, विष नहि तजीओ अंग.

पुत्र कुपात्र ज मैं हुओ, अवगुण भर्यो अनंत;
वाहित वृद्ध विचारके, माफ करो भगवंत!

शासनपति वर्द्धमानजी, तुम लग मेरी दोड;
1 जैसे समुद्र जहाज विण, सूजत और न ठोर.

भव भ्रमण संसार दुःख, ताका वार न पार;
निर्लोभी सदगुरु बिना, कवण उतारे पार.

---

1 समुद्रना वहाणना पक्षीने बीजे उडीने जवानुं स्थल नथी तेम.

श्री पंचपरमेष्ठी भगवंत गुरुदेव महाराज! आपनी सम्यक्ज्ञान, सम्यक्दर्शन, सम्यक्चारित्र, तप, संयम, निर्जरा आदि मुक्तिमार्ग यथा शक्तिअे शुद्ध उपयोग सहित आराधन पालन स्पर्शन करवानी आज्ञा छे. वारंवार शुभ उपयोग संबंधी सज्झाय ध्यानादिक अभिग्रहनियम पच्चखाणादि करवा, करावानी, समिति-गुप्ति आदि सर्व प्रकारे आज्ञा छे.

निश्चे चित्त शुद्ध मुख पढत, तीन योग थिर थाय;
दुर्लभ दीसे कायरा, हलु कर्मी चित्त भाय.

अक्षर पद हीणो अधिक, भूल चूक कहीं होय;
अरिहा सिद्ध निज साखसे, मिच्छा दुक्कड मोय.

भूल चूक मिच्छामि दुक्कडं

वृहद् आलोचना समाप्त.



१३

आलोचना पाठ

दोहा

वंदो पांचों परमगुरु, चौवीसौ जिनराज;
कहुं शुद्ध आलोचना, शुद्ध करन के काज. १.

सखी छंद-१४ मात्रा

सुनिये जिन ! अरज हमारी, हम दोष किये अति भारी;
तिनकी अब निवृत्ति काजा, तुम शरन लही जिनराजा. २.

इक बे ते चउ इन्द्री वा, मन-रहित-सहित जे जीवा;
तिनको नहि करुना धारी, निरदई व्है घात विचारी. ३.

समरंभ समारंभ आरंभ, मन वच तन कीने प्रारंभ;
कृत कारित मोदन करिकैं, क्रोधादि चतुष्टय धरिकैं. ४.

शत आठ जु इम भेदनतैं, अघ कीने पर छेदनतैं;
तिनकी कहुं कोलौं कहानी, तुम जानत केवल ज्ञानी. ५.

विपरीत अेकांत विनयके, संशय अज्ञान कुनयके;
वश होय घोर अघ कीने, बचतैं नहि जात कहीने. ६.

कुगुरुनकी सेव जु कीनी, केवल अदयाकर भीनी;
या विधि मिथ्यात भ्रमायो, चहु-गतिमधि दोष उपायो. ७.

हिंसा पुनि झूठ जु चोरी, परवनितासों दृग जोरी;
आरंभ परिग्रह भीनो, पनपाप जु या विधि कीनो. ८.

सपरस रसना घ्राननको, चख कान विषय सेवनको;
बहु करम किये मनमाने, कछु न्याय अन्याय न जाने. ९.

फल पंच उदबर खाये, मधु मांस मद्य चित्त चाहे;
नहि अष्ट मूलगुणधारी, विरस जु सेये दुःखकारी. १०.

दुईबीस अभख जिन गाये, सो भी निशदिन भुंजाये;
कछु भेदाभेद न पायो, ज्यों त्यों कर उदर भरायो. ११.

अनंतान जु बंधी जानो, प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो;
संज्वलन चौकरी गुनिये, सब भेद जु षोडश सुनिये. १२.

परिहास अरति रति शोग, भय ग्लानि तिवेद सँजोग;
पनवीस जु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम. १३.

निद्रावश शयन कराई, सुपनेमधि दोष लगाई;
फिर जागी विषय-वन धायो, नानाविध विषफल खायो. १४.

किये आहार निहार विहारा, इनमें नहि जतन विचारा;
बिन देखी, धरी, उठाई. बिन शोधी भोजन(वस्तु)खाई. १५.

तब ही परमाद सतायो बहुविधि विकल्प उपजायो;
कछु सुधि बुधि नाहि रही है, मिथ्यामति छाय गई है. १६.

मरजादा तुम ढिग लीनी, ताहूमें दोष जु कीनी;
भिन्न भिन्न अब कैसे कहिये, तुम ज्ञानविषैं सब पईये. १७.

हा! हा! मैं दुठ अपराधी, त्रस जीवनराशि विराधी;
थावरकी जतन न कीनी, उरमें करुणा नहि लीनी १८.

पृथिवि बहु खोद कराई, महलादिक जागां चिनाई;
बिनगाल्यो पुनि जल ढोल्यो, पंखातैं पवन विलोल्यो. १९.

हा! हा! मैं अदयाचारी, बहुहरित जु काय विदारी;
या मधि जीवनके खंदा, हम खाये धरि आनंदा. २०.

हा! मैं परमाद बसाई, बिन देखे अगनि जलाई;
ता मध्य जीव जे आये, ते हू परलोक सिधाये. २१.

बिंधो अन्न राति पिसायो, ईंधन बिनसोधि जलायो;
झाडू ले जागा बुहारी, चिंटिआदिक जीव विदारी २२

जल छानि जीवानी कीनी, सोहू पुनि डारि जु दीनी;
नहि जलथानक पहुँचाई, किरिया बिन पाप उपाई. २३.

जल मल मोरिनमें गिरायो, कृमि कुल बहु घात करायो;
नदियनि बिच चीर धुवाये, कोसनके जीव मराये. २४.

अन्नादिक शोध कराई, तामैं जु जीव निसराई;
तिनका नहि जतन कराया, गरियारे धूप डराया. २५.

पुनि द्रव्य कमावन काजे, बहु आरंभहिंसा साजे;
कीये तिसनावश अघ भारी, करुना नहि रंच विचारी २६.

इत्यादिक पाप अनंता, हम कीने श्री भगवंता;
संतति चिरकाल उपाई, वानीतैं कहिय न जाई. २७.

ताको जु उदय जब आयो, नानाविध मोहि सतायो;
फल भुंजत जिय दुःख पावे, वचतैं कैसें करि गावे. २८

तुम जानत केवलज्ञानी, दुःख दूर करो सिवथानी;
हम तो तुम शरण लही है, जिन तारण बिरुद सही है. २९.

जो गांवपति इक होवे, सो भी दुःखिया दुःख खोवे;
तुम तीन भुवन के स्वामी! दुःख मेटो अंतरजामी. ३०.

द्रौपदीको चीर बढ़ायो, सीता प्रति कमल रचायो;
अंजनसे किये अकामी, दुःख मेटो अंतरजामी. ३१.

मेरे अवगुण न चितारो, प्रभु अपनो बिरुद निहारो;
सब दोषरहित करी स्वामी, दुःख मेटहु अंतरजामी. ३२.

इन्द्रादिक पदवी न चाहूँ, विषयनिमें नाहिं लुभाऊं;
रागादिक दोष हरीजे, परमातम निजपद दीजे. ३३.

दोहा

दोषरहित जिनदेवजी, निजपद दीज्यो मोय;
सब जीवनकैं सुख बढ़ै, आनंद मंगल होय. ३४.

अनुभव माणिक पारखो, जौहरी आप जिनंद;
येहि वर मोहि दीजिये, चरण शरन आनंद. ३५.

आलोचना पाठ समाप्त।



प्रभात का भक्तिक्रम

अमूल्य तत्त्वविचार

बहु पुण्य केरा पुंजथी शुभ देह मानवनो मळयो,
तोये अरे भवचक्रनो आंटो नहि एकके टळयो।
सुख प्राप्त करतां सुख टळे छे लेश ए लक्षे लहो,
क्षण क्षण भयंकर भावमरणे कां अहो राची रहो? १
लक्ष्मी अने अधिकार वधतां, शुं वध्युं ते तो कहो?
शुं कुटुंब के परिवारथी वधवापणुं ए नय ग्रहो।
वधवापणुं संसारनुं नर देहने हारी जवो,
एनो विचार नहीं अहो हो! एक पळ तमने हवो! २
निर्दोष सुख निर्दोष आनंद, ल्यो गमे त्यांथी भले,
ए दिव्य शक्तिमान जेथी जंजीरेथी नीकळे,
परवस्तुमां नहि मूंझवो, एनी दया मुजने रही,
ए त्यागवा सिद्धांत के पश्चात् दुःख ते सुख नहीं ३
हुं कोण छुं? क्यांथी थयो? शुं स्वरुप छे मारुं खरुं?
कोना संबंधे वळगणा छे? राखुं के ए परहरुं?
एना विचार विवेकपूर्वक शांत भावे जो कर्यां
तो सर्व आत्मिक ज्ञानना सिद्धांत तत्त्व अनुभव्यां ४

ते प्राप्त करवा वचन कोनुं सत्य केवळ मानवुं,
निर्दोष नरनुं कथन मानो 'तेह' जेणे अनुभव्युं ।
रे! आत्म तारो! आत्म तारो! शीघ्र एने ओळखो,
सर्वात्ममां समदृष्टि द्यो आ वचनने हृदये लखो ५

अनित्यादि वैराग्य भावनाएँ

अनित्य भावना

विद्युत् लक्ष्मी प्रभुता पतंग,
आयुष्य ते तो जळना तरंग,
पुरंदरी चाप अनंग रंग,
शुं राचीए त्यां क्षणनो प्रसंग !

अशरण भावना

सर्वज्ञनो धर्म सुशर्ण जाणी,
आराध्य आराध्य प्रभाव आणी;
अनाथ एकांत सनाथ थाशे,
एना विना कोई न बांह्य स्हाशे ।

एकत्व भावना

शरीरमां व्याधि प्रत्यक्ष थाय,
ते कोई अन्ये लई ना शकाय;

ए भोगवे एक स्व आत्म पोते,
एकत्व एथी नय सुज्ञ गोते।

अन्यत्व भावना

ना मारां तन रूप कांति युवती, ना पुत्र के भ्रात ना,
ना मारां भृत स्नेहीओ स्वजन के, ना गोत्र के ज्ञात ना;
ना मारां धन धाम यौवन धरा, ए मोह अज्ञात्वना;
रे! रे! जीव विचार एम ज सदा, अन्यत्वदा भावना।

अशुचि भावना

खाण मूत्र ने मळनी, रोग जरानुं निवासनुं धाम;
काया एवी गणीने, मान त्यजीने कर सार्थक आम

समत्व बोध

मत मोहा, मत खुश हो; मत नाखुश हो अच्छी बुरी
परिस्थिति में
मन स्थिरता चाहे जो, सच्चिदानंद सिद्धि के लिए

निवृत्ति बोध

अनंत सौख्य नाम दुःख त्यां रही न मित्रता!
अनंत दुःख नाम सौख्य प्रेम त्यां, विचित्रता!

उघाड न्याय-नेत्र ने निहाळ रे! निहाळ तुं;
निवृत्ति शीघ्रमेव धारी ते प्रवृत्ति बाळ तुं।

उपसंहार

ज्ञान, ध्यान, वैराग्यमय, उत्तम जहां विचार;
ए भावे शुभ भावना, ते ऊतरे भव पार।

दोहरा

ज्ञानी के अज्ञानी जन, सुख दुःख रहित न कोय;
ज्ञानी वेदे धैर्यथी, अज्ञानी वेदे रोय.

मंत्र, तंत्र, औषध नहीं, जेथी पाप पलाय;
वीतराग वाणी विना, अवर न कोई उपाय.

जन्म, जरा ने मृत्यु, मुख्य दुःखना हेतु;
कारण तेनां बे कह्यां, राग द्वेष अणहेतु.

वचनामृत वीतरागनां, परम शांतरस मूल;
औषध जे भवरोगनां, कायरने प्रतिकूल.

नथी धर्यो देह विषय वधारवा,
नथी धर्यो देह परिग्रह धारवा
देह धर्यो छे कर्मो खपाववा,
देह धर्यो छे भक्ति कमाववा ।।

सद्गुरु भक्ति रहस्य

बिना नयन पावे नहीं, बिना नयन की बात।
सेवे सद्गुरु के चरण, सो पावे साक्षात्।।

बुझी चहत जो प्यास को, है बुझन की रीत
पावे नहीं गुरुगम बिना, यही अनादि स्थित।

येही नहीं है कल्पना, येही नहीं विभंग।
कई नर पंचम काल में, देखी वस्तु अभंग।।

नहीं दे तू उपदेश को, प्रथम लेही उपदेश
सब से न्यारा अगम है, वह ज्ञानी का देश।

जप तप और व्रतादि सब, तहां लगी भ्रमरूप।
जहां लगी नहीं संत की, पाई कृपा अनूप।

पाया की यह बात है, निज छंदन को छोड़
पीछे लग सत्पुरुष के, तो सब बंधन तोड़।

ब्रह्मचर्य सुभाषित

निरखीने नव यौवना, लेश न विषय निदान।
गणे काष्ठनी पुतळी, ते भगवान समान।।

आ सघळा संसारनी, रमणी नायक रूप।
ए त्यागी, त्याग्युं बधुं, केवळ शोकस्वरूप।।

एक विषयने जीततां, जीत्यो सौ संसार।
नृपति जीततां जीतिये, दळ, पुर ने अधिकार।।

विषयरूप अंकुरथी, टळे ज्ञान ने ध्यान ।
लेश मदिरा पान थी, छाके ज्यम अज्ञान ।

जे नव वाड विशुद्धथी, धरे शियळ सुखदाई ।
भव तेनो लव पछी रहे, तत्त्व वचन ए भाई ।।

सुंदर शियळ सुर तरु, मन वाणी ने देह ।
जे नरनारी सेवशे, अनुपम फळ ले तेह ।।

पात्र विना वस्तु न रहे, पात्रे आत्मिक ज्ञान ।
पात्र थवा सेवो सदा, ब्रह्मचर्य मतिमान ।।

श्री सद्गुरु उपकार महिमा

प्रथम नमुं गुरुराजने, जेणे आप्युं ज्ञान;
ज्ञाने वीरने ओळख्या, टळ्युं देह-अभिमान । १
ते कारण गुरुराजने, प्रणमुं वारंवार;
कृपा करी मुज ऊपरे, राखो चरण मोझार । २
पंचम काळे तुं मळयो, आतमरत्न-दातार;
कारज सार्यां माहरां, भव्य जीव हितकार । ३
अहो! उपकार तुमारडो, संभारुं दिन रात;
आवे नयणे नीर बहु, सांभळतां अवदात । ४
अनंतकाल हुं आथडयो, न मळ्या गुरु शुद्ध संत;
दुषम काळे तुं मळयो, राज नाम भगवंत । ५

राज राज सौ को कहे, विरला जाणे भेद;
जे जन जाने भेद ते, ते करशे भव छेद। ६

अपूर्व वाणी ताहरी, अमृत सरखी सार;
वळी तुज मुद्रा अपूर्व छे, गुणगण रत्न भंडार। ७

तुज मुद्रा तुज वाणीने, आदरे सम्यक् वंत;
नहीं बीजानो आशरो, ए गुह्य जाणे संत। ८

बाह्य चरण सुसंतनां, टाले जननां पाप;
अंतर चारित्र गुरुराजनुं, भांगे भव संताप। ९

श्री सीमंधर जिन वन्दना

भावना

श्री सीमंधर साहिबा! अरज करुं कर जोड़;
शशी दर्शन सायर वधे, वंदना मारी होजो।

अनंत चोवीसी जिन नमुं, सिद्ध अनंता क्रोड;
जे जिनवर मुक्ते गया, वंदुं बे कर जोड़।

दोय कोडी केवळ धरा, विहरमान जिन वीश;
सहस्त्र कोटि केवळी नमुं, साधु नमुं निशदिश।

अनंत काळथी आथडयो, निर्धनियो निराधार,
श्री सीमंधर साहिबा! तुम विण कोण आधार?

जे चारित्रे निर्मळा, ते पंचायण सिंह,
विषय कषाय ने गंजिया, ते प्रणमुं निश दिन ।।

(तीन नमस्कार)

चैत्यवंदन

श्री सीमंधर जग धणी! आ भरते आवो
करुणावंत करुणा करी, अमने वंदावो!

सकळ भक्तना तुमे धणी, जो होये अम नाथ;
भव भव हुं छुं ताहरो, नहीं मेलुं हवे साथ ।

सयल संग छंडी करी चारित्र लेशुं,
पाय तमारा सेवीने शिव-रमणी वरशुं ।

ए अरजो मुजने घणो, पूरो श्री सीमंधर देव!
इहां थकी हुं विनवुं, अव धारो मुज सेव ।।

(जंकिंचि आदि चैत्यवंदन विधि)

स्तवन

धन्य धन्य क्षेत्र महाविदेह जी, धन्य पुंडरिक गिरिगाम,
धन्य तिहांना मानवी जी, नित्य ऊठी करे रे प्रणाम;
सीमंधर स्वामी! कहींये रे हुं महाविदेह आवीश,
सहजानंद, प्रभुजी! कहींये रे हुं आपने वंदीश?

समवसरण देवे रच्यु जी, चोसठ इन्द्र नरेश
सोना तणा सिंहासन बेठा, चामर छत्र धरेश

सीमधर स्वामी! कहीये रे हुं महाविदेह आवीश?
सहजानंद प्रभुजी! कहीये रे हुं आपने वंदीश?

इन्द्राणि काढे गहुंली जी, मोतीना चोक पूरेश,
ळळी ळळी लिये लूंछणा जी, जिनवर दिये उपदेश?

सीमधर स्वामी! कहीये रे हुं महाविदेह आवीश?
सहजानंद प्रभुजी! कहीये रे हुं आपने वंदीश?

एणे समे मे सांभळ्यु जी, हवे करवा पच्चक्खाण,
पोथी, ठवणी तिहां कने जी, अमृत वाणी वखाण।

सीमधर स्वामी! कहीये रे हुं महाविदेह आवीश?
सहजानंद प्रभुजी! कहीये रे हुं आपने वंदीश?

रामने वहाला घोडला जी, वेपारीने वहाला छे दाम,
अमने वहाला सीमधर स्वामी, जेम सीताने श्रीराम

सीमधर स्वामी! कहीये रे हुं महाविदेह आवीश?
सहजानंद प्रभुजी! कहीये रे हुं आपने वंदीश?

नही मागु प्रभु राज रिद्धिजी, नही मागु गरथ भंडार,
हुं मागु प्रभु एटलु जी, तुम पासे अवतार,

सीमधर स्वामी! कहीये रे हुं महाविदेह आवीश?
सहजानंद प्रभुजी! कहीये रे हुं आपने वंदीश?

देव न दीधी पांखडी जी, केम करी आवुं हजुर?
मुजरो मारो मानजो जी, प्रह उगमते सूर।

सीमंधर स्वामी! कहीये रे हुं महाविदेह आवीश?
सहजानंद प्रभुजी! कहीये रे हुं आपने वंदीश?

समय सुन्दरनी विनती जी, मानजो वारंवार
अम बालकनी विनती जी, मानजो वारंवार
बे कर जोडी प्रभु विनवुं जी, विनतडी अवधार

सीमंधर स्वामी! कहीये रे हुं महाविदेह आवीश?
सहजानन्द प्रभुजी! कहीये रे हुं आपने वंदीश?

जय वीतराग

थोई (स्तुति)

महाविदेह क्षेत्रमां सीमंधर स्वामी, सोनानां सिंहासनजी,
रूपानां त्यां छत्र बिराजे, रत्नमणिना दीवा दीपे जी।
कुमकुम वरणी गहुंली विराजे, मोतीना अक्षत साचाजी,
त्यां बेठा सीमंधर स्वामी, बोले मधुरी वाणी जी।
केसर चंदन भर्यां कचोलां, कस्तुरी बरासो जी,
पहेली रे पूजा अमारी होजो, उगमते प्रभाते जी।

सो क्रोड साधु सो क्रोड साध्वी जाण
ऐसे परिवारे सीमंधर स्वामी भगवान
दश लाख केवली ए प्रभुजीनो परिवार
वाचक जश उपदेशे, वंदु नित्य वार हजार।

प्रभु श्री सहजानंदघनजी कृत
स्तवन संग्रह

१. पद : राग - धन्याश्री

चेतावनी :-

पंथीडा! प्रभु भजी ले दिन चार ....प्रभु ..... (२)
तन भजतां तन जेल ठेलायो, अशरण आ संसार....पं...
तन धन कुटुंब सजी तजी भटके, चउगति वारंवार... पं..
क्यां थीं आव्यो? क्यां जावु छे? रहेवुं केटली वार..पं..
कर्तव्य शु छे? करी रहयो शु हजी न चेते गमार..पं..
आत्मार्पण थई प्रभु पद भजतां, बे घडीअे भव पार...पं..
माटे था तैयार भजनमां, सहजानंद पथ सार.......पं...
दि. २८-३-१९५४

२. पद : राग - मालकोष

सहज समाधि :-

भयो मेरो ... मनुआँ बेपरवाह ....
अहँ-ममताकी बेड़ी फैडी, सज धज आतम-उत्साह..भयो.

अंतर-जल्प विकल्प संहारी, मार भगायी चाह
....भयो ...

कर्म-कर्मफल चेतनताको, दीन्हो अग्नि-दाह
....भयो....

पारतंत्र्य पर-निजको मिटायो, आप स्वतंत्र सनाह
... भयो ...

निज कुलवट की रीति निभाई, पत राखी वाह वाह
....भयो ...

तीन लोक में आण फेलाई, आप शाहन को शाह
... भयो ...

ज्ञान चेतना संगमें विलसै, सहजानंद अथाह
....भयो ....

३. पद

परिचयः-

नाम सहजानंद मेरा नाम सहजानंद ।
अगम-देश अलख-नगर-वासी मैं निर्द्वन्द्व....नाम ...
सद्गुरू-गम तात मेरे, स्वानुभूति मात ।
स्याद्वाद-कुल है मेरा, सद् विवेक भ्रात....नाम....
सम्यग्-दर्शन देव मेरे, गुरू है सम्यग् ज्ञान ।

आत्म-स्थिरता धर्म मेरा, साधन स्वरूप-ध्यान ..नाम
समिति ही है प्रवृति मेरी, गुप्ति ही आराम।
शुद्ध चेतना प्रिया सह, रमत हूँ निष्काम नाम
परिचय यही अल्प मेरा, तनका तनसे पूछ।
तन-परिचय जड़ ही है सब, क्यों मरोडे मूंछ? ...नाम

४. पद

मन-शिक्षाः-

रे मन! मान तू मोरी बात क्यों इत उत बहि जात
(२)

रहे न पत सति परघर भटकत, पर-हद नृप बंधात;
जड़ भी कभी तुझ धर्म न सेवे, तू जड़ता अपनात
... रे मन. १.

काहेको भक्त! विभक्त प्रभुसों, काहे न लाजे मरात!
प्रियतम बिन कहीं जात न सति-मन, तू तो भक्त मनात
....रे मन. २.

पंच विषय-रस सेवें इंद्रियाँ, तुझे तो लातम् लात;
काहे तू इष्टानिष्ट मनावत, सुख-दुख-भ्रम भरमात
...रे मन. ३.

सुनिके सद्गुरू सीख सुहावनी मनन करो दिन-रात;
सहजानंद प्रभु-स्थिर-पद खेलो, हंसो सोहं समात
....रे मन. ४.

५. पदः राग-मालकोष

आत्म-भावनाः-

हुं तो आत्मा छुं जड शरीर नथी (२)

शरीर मसाणनी राखनो ढगलो,
पळमां विखरे ठोकरथी;
मुझ वण ए शब पूजो, बाळो,
ज्ञायकता नहिं सुख-दुःखथी .. हुं १.

स्पर्श गंध रस रूप शब्द अने,
जाति वर्ण लिंग मुझमां नथी;
फिल्म बॅटरी प्रेरक जुदो,
तेम देहादिक भिन्न मुजथी ... हुं २.

सूर्य चंद्र मणि दीप कान्तिनी,
मुज प्रकाश वण किम्मत शी?
प्रति देहे जे शोभनिकता छे,
ते मारी, जुओ विश्व मथी ... ३.

अग्नि काष्ठ-आकारे रहे पण,
थाय न काष्ठ ए वात नक्की;
शाके लूण देखाय नहिं पण,
अनुभवाय ते स्वाद थकी हुं ४.

शरीराकार रही शरीर न थाउं,
लवण जेम जणाउं सही;
रत्न दीप जेम स्व-पर-प्रकाशक,
स्वयं ज्योति छुं प्रगट अहिं. हुं ५.

अग्नि जेम उपयोग-चीपीओ,
पकडावुं कोई सज्जनथी;
प्रयोगथी विजळी माखण जेम,
सहजानन्दघन अनुभवथी हुं ६.

६. पद

चेतावनीः-

जीया! तू चेत सके तो चेत, सिर पर काल झपाटा देत..
दुर्योधन, दुःशासन बन्दे! कीन्हो छल भरपेट;
देख! देख!! अभिमानी कौरव, दल बल मटियामेट
... जीया १

गर्वी रावण से लम्पट भी, गये रसातल खेट;
मान्धाता सरिखे नृसिंह केई, हारे मरघट लेट
... जीया २.

डूब मरे सुभूम से लोभी, निधि रिद्धि सैन्य समेत;
शक्री, चक्री, अर्धचक्री यहाँ, सबकी होत फजेत
.... जीया ३.

तातैं लोभ, मान छल त्यागी, करो शुद्ध हिय-खेत;
सुपात्रता सत्संग योग से, सहजानन्द पद लेत
....जीया ४.

(दि. ११-२-१९६०)

७. पद

अनुभव:-

सफल थयुं भव मारूं हो, कृपालुदेव!
पामी शरण तमारूं हो, कृपालुदेव!
कलिकाले आ जम्बु-भरते, देह धर्यो निज-पर-हित शरते,
टाळ्युं मोह अंधारूं हो, कृपालुदेव...। १
धर्म-ढोंगने दूर हटावी, आतम धर्मनी ज्योत जगावी;
कर्युं चेतन-जड़ न्यारूं हो, कृपालुदेव । २
सम्यग् दर्शन-ज्ञान-रमणता त्रिविध कर्मनी टाळी ममता;
सहजानंद लह्युं प्यारूं हो, कृपालुदेव....। ३
(दि. १-८-१९६३)

८. पद

राज-महिमा :-

(प्रभु आज चरणों में आये तुम्हारे... ए ढब)
प्रभु राजचन्द्र कृपालु हमारे............
मैं हूँ शरणागत नाथ तुम्हारे.......... प्रभु०. १.

मेरे चिदाकाश के अजब सितारे;

मेरे मनोरथ के सारथी भारे...... प्रभु० २

तू खेवैया मेरी नैया निकट किनारे;

मेरे दुःख द्वन्द्व ही कट गये सारे.....प्रभु०. ३

तू ही मेरे सर्वस्व हृदय दुल्हारे;

तेरी कृपा सहजानंद निहारे .... प्रभु०. ४

(दि. १-११-१९६४)

९. पद

प्रार्थना :-

आवो आवो हो गुरूराज! मारी झुंपडीअे

राखवा पोतानी लाज मारी झुंपडीअे

जंबु-भरते आ काले प्रवर्त्ते, धर्मना ढोंग समाज

मारी. १.

तेथी कंटाळी आप दरबारे, आव्यो हुं शरणे महाराज

... मारी. २.

छतां मूके ना केडो आ दुनिया, अंध परीक्षा व्याज

....मारी. ३.

नाम धारी केई आपना ज भक्तो, पजवे कलंक दई आज

....मारी. ४.

आवो पधारो धैर्य बंधावो, ढील करो शाने महाराज
....मारी. ५.

आपो आपो सौने प्रभु ! सन्मति, आपो भक्तिनुं साज
... मारी. ६.

न हो अंतराय कोई मारा मारगमां, नहिं तो जाशे तुझ लाज
... मारी. ७.

मूळ मारग निर्विघ्ने आराधुं, सहजानंद स्वराज
....मारी. ८.

(दि. २८-८-१९६५)

१०. पद

प्रभुनाम रहस्य :-

प्रभु तारां छे अनंत नाम, कये नामे जपुं जपमाळा,
घट-घट आतमराम, कये ठामे शोधुं पगपाळा ....
जिन-जिनेश्वर देव तीर्थंकर, हरि हर बुद्ध भगवान
.. कये.
ब्रह्मा विष्णु महेश ईश्वर, अल्लाह खुदा इन्सान
.. कये. १.
अलख निरंजन सिद्ध परम तत्त्व, सत् चिदानन्द ईश
... कये.

प्रभु परमात्मा पर ब्रह्म शंकर, शिव शंभु जगदीश
....कये. २.
अज अविनाशी अक्षर तारक, दीनानाथ दीनबंधु
... कये;
अेम अनेक रूपे तुं अेक छो, अव्याबाध सुखसिंधु
... कये. ३.
परमगुरू सम सत्ताधारी, सहज आत्म स्वरूप
....कये.
'सहजात्म स्वरूप परमगुरू' अे, नाम रटुं निजरूप
....कये. ४.
मंदिर मस्जिद के नहिं गिरजाघर, शक्तिरूपे घटमांय
... कये;
परमकृपालु रूपे प्रगट तुं, सहजानन्दघन त्यांय
....कये. ५.

(दि. २५-९-१९६९, भाद्र. शु. १५, सं. २०२५)

११. पद

देवतत्त्व समन्वय :-

देवाधिदेवपद अेक, ऋषभ-प्रभु! तुझमाँ घटे छे....
विश्वमां धर्मो अनेक, भिन्न-भिन्न नामे रटे छे....
विष्णु-अवतार तुं आठमो अे,
भागवत ग्रन्थ आख्यान ... ऋ०.

शंकरे तुज रूपे अवतार धर्यो,

शिवसंहिता अे ब्यान ..... ऋ० . १.

रत्नत्रयी त्रिशुले संहार्यो,

अज्ञान - अंधकासुर ऋ०

खम्भे तारे लटके अलकावलि,

जटा धारी तपशूर....... ऋ० . २.

निर्वाणदिन अे ज महाशिवरात्री,

तुं सत् चित् आनंदी ...... ऋ० .

अष्टापद-कैलाशवासी तुं ज,

चरणे सन्मुख रहे नंदी .... ऋ० . ३.

विष्णु नाभिअे ब्रह्मा थई प्रगटयो,

ते तुं नाभिराय नंद ... ... ऋ० .

समवसरण उपदेशे चतुर्मुख,

पिता तुं सरस्वती पंड ...... ऋ० . ४.

बाबा आदम ते तुं ज **आदिनाथ.**

मान्य इस्लामी धर्म...... ऋ० .

कान दाबी बाहुबलिअे पोकार्यो,

बांगविधि अे मर्म .... ऋ० . ५.

आदि बुद्ध तुं, आदि तीर्थंकर,

आदि नरेश समाज ...... ऋ० .

आद्य संस्कृतिनो तुं पुरस्कर्ता,

सहजानन्द-पद राज ..... ऋ० . ६.

(दि. २०-१०-१९६९, आश्विन शु. १०, विजयादशमी सं. २०२५)

मंगल - आरति

ॐ परम कृपालु देव ! जय परम कृपालु देव !!
हे परम कृपालु देव !!!......

जन्म-जरा-मरणादिक ...... सर्व दुःखोनो
अत्यंत क्षय करनार, जे अत्यंत० (२)
एवो वीतराग पुरुषोनो, तीर्थंकर मुनिजननो,
रत्नत्रयी पथ सार....ॐ.... १.

मूळ मार्ग तें आप्यो ...... मुज रंक बाळने,
अनंत कृपा करी आप, प्रभु अनंत० (२)
नाथ चरण बलिहारी ! हरी भव-भ्रान्ति म्हारी,
अहो उपकार अमाप !!! ...... ॐ ...... २.

प्रत्युपकार ते वाळवा-ने हुं छुं,
सर्वथा ज असमर्थ, छुं सर्वथा० (२)
निस्पृह छो कंई लेवा, आप श्रीमद् महादेवा,
परितृप्त निज अर्थ........ॐ .... ३.

जेथी मन-वच-तन ..... एकाग्र थई नमुं
आप चरण अरविंद, नमुं आप० (२)
आत्मा अर्पुं तुजने, परम भक्ति हो मुजने,
याचुं न जड-पद-इंद...... ॐ........ ४.

अने वीतराग पुरूषना मूळ धर्मनी,

उपासना ज अखंड. प्रभु उपासना० (२)

जाग्रत रहो उर म्हारे ! भव-पर्यन्त अे स्हारे,

छूटो विषयानंद...... ॐ ...... ५.

आप कने हे नाथ ! अेटलुं हुं मागुं ते,

सफळ थाओ अभिलाष, मुज सफळ० (२)

हुं सेवक तुं स्वामी, पुष्ट निमित्त अनुगामी,

सहजानन्द विलास...... ॐ ...... ६.

मंगल दीपक रहस्य

जगमग जगमग जगमग दीया,
प्रगटाया प्रभु मांगलिक दीया,
अपने घट किया मांगलिक दिया,
अहम्-मम गालक अर्थ-प्रक्रिया...१.
केवलदर्शन-ज्ञान स्वकीया,
द्विविध चेतना निज रस प्रिया,
भ्रम तम विध्न विनाशक क्रिया,
अनंत वीर्य अरि अंत करी; या...२.
अनंत-चतुष्टय स्वाधीन जीया,
मंग-स्व सहजानन्द-पद लीया;
मंगल दीप-रहस्य सुधीया!
अन्तरंग विधि अनुभवनीया .३.

सद्गुरु वंदन

अहो ! अहो! श्री सद्गुरू, करूणासिंधु अपार;
आ पामर पर प्रभु कर्यो, अहो! अहो! उपकार;
शुं प्रभु चरण कने धरूं, आत्माथी सौ हीन;
ते तो प्रभुअे आपीओ, वर्तुं चरणाधीन;
आ देहादि आजथी, वर्तो प्रभु आधीन;
दास दास हुं दास छुं, आप प्रभुनो दीन;
षट् स्थानक समजावीने, भिन्न बताव्यो आप;
म्यान थकी तरवारवत्, अे उपकार अमाप;
जे स्वरूप समज्या विना, पाम्यो दुःख अनन्त;
समजाव्युं ते पद नमुं, श्री सद्गुरू भगवंत;
परम पुरुष प्रभु सद्गुरू, परमज्ञान सुखधाम;
जेणे आप्युं भान निज, तेने सदा प्रणाम;
देह छतां जेनी दशा, वर्ते देहातीत;
ते ज्ञानीनां चरणमां, हो वंदन अगणित.

प्रणिपात स्तुति

हे परमकृपाळु देव ! जन्म, जरा मरणादिक सर्व दु:खोनो अत्यन्त क्षय करनारो अेवो वीतराग पुरूषनो मूळ मार्ग आप श्रीमदे अनंत कृपा करी मने आप्यो, ते अनंत उपकारनो प्रतिउपकार वाळवा हुं सर्वथा असमर्थ छु. वळी आप श्रीमद् कंई पण लेवाने सर्वथा निस्पृह छो, जेथी हुं मन, वचन, कायानी अेकाग्रताथी आपना चरणारविंदमां नमस्कार करूंछुं. आपनी परम भक्ति अने वीतराग पुरूषना मूल धर्मनी उपासना मारा हृदयने विषे भवपर्यन्त अखंड जागृत रहो अेटलुं हुं मागु छुं ते सफल थाओ.!

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः



परिचय झांकी :

श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, हम्पी

—जहां जगाई आहलेक-एक अवधूत आत्मयोगी ने !

उन्मुक्त आकाश, प्रसन्न, प्रशांत प्रकृति, हरियाले खेत, पथरीली पहाड़ियाँ, चारों ओर टूटे-बिखरे खंडहर और नीचे बहती हुई तीर्थसलिला तुंगभद्रा- इन सभी के बीच 'रत्नकूट' की पर्वतिका पर गिरि कंदराओं में छाया-फैला खड़ा है यह एकांत आत्मसाधन का आश्रम, जंगल में मंगलवत् !

भगवान मुनिसुव्रत स्वामी और भगवान राम के विचरण की, बाली-सुग्रीव की रामायणकालीन यह 'किष्किन्धा' नगरी और कृष्णदेवराय के विजयनगर साम्राज्य की जिनालयों–शिवालयों–वाली यह समृद्ध रत्न-नगरी कालक्रम से किसी समय खंडहरों की नगरी बनकर पतनोन्मुख हो गई। उसी के मध्य बसी हुई रत्नकूट पर्वतिका की प्राचीन आत्मज्ञानियों की यह साधनाभूमि और मध्ययुगीन वीरों की यह रणभूमि इस पतनकाल में हिंसक पशुओं, व्यतरों, चोर-लुटेरों और पशु-बलि करने वाले दुराचारी हिंसक तांत्रिकों के कुकर्मों का अड्डा बन गई ....

... ... पर एक दिन...अब से ठीक बाईस वर्ष पूर्व सुदूर हिमालय की ओर से, इस धरती की भीतरी पुकार सुनकर, उससे अपना पूर्व ऋण-सम्बन्ध पहचान कर, आया एक अवधूत आत्मयोगी। अनेक कष्टों, कसौटियों, अग्नि-परीक्षाओं और उपसर्ग-परिषहों के बावजूद उसने यहां आत्मार्थ की आहलेक जगाई, बैठा वह अपनी अलखमस्ती में और भगाये उसने भूत-व्यन्तरों को, चोर-लुटेरों को, हिंसक दुराचारियों को और यह पावन धरती पुनः महक उठी... और फिर... फिर लहरा उठा यहां आत्मार्थ का धाम, साधकों का साधना स्थान-यह आश्रम—बड़ा इसका इतिहास है, विस्तृत उसके योगी संस्थापक का वृतांत है, जो असमय ही चल पड़ा अपनी चिरयात्रा को, चिरकाल के लिए, अनेकों को चीखते-चिल्लाते छोड़कर और अनेकों के आत्म-दीप जलाकर !

शुद्धि-पत्रक

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
3	16	रूपे थाय छे	रूपे स्थित थाय छे
5	13	हुँय	हुँ य
5	14	शुंय	शुं य
9	8	करने	करीने
9	9	प्रपंचमा	प्रपंचमां
10	6	पश्चाताप	पश्चात्ताप
10	7	ईच्छुं	इच्छुं
13	1	यथायोग	यथायोग्य
15	11	कइ न कंइ	कंइ ने कंइ
15	13	कर्ता पणुं	कर्तापणुं
18	6	ईष्ट	इष्ट
18	12	थाय छे	थया छे, थाय छे
18	14	सत्यपुरुषोए	सत्पुरुषोए
19	17	वृति	वृत्ति
20	18	आओ	थाओ
24	2	मतार्थी	मतार्थी
26	3	आत्म	आतम
26	6	भांखुं	भाखुं
28	1	कृष	कृश
34	18	चरित्रनो	चारित्रनो
35	12	उददेशथी	उपदेशथी
35	19	तेहनों	तेहनो
37	9	उपदाननुं	उपादाननुं
37	17	अंठवत	अंठवत्
37	20	एमा	एमां
39	2	वदुं	वंदुं
39	14	श्रीसुख	श्रीमुख

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
48	13	दीवा	दीपा
50	3	भाषा में छे	भाषा मां छे
55	1	प्रकार	प्रकारे
60	3	साद्द्ह्या	सद्द्ह्या
64	4	गरीबं	गरीब
67	3	उदबर	उदंबर
80	4	क्यां थी	कयांथो
80	12	फैडी	फेडी
86	5	हृदय	हृदय
86	12	कंई	कोई

कई स्थानों पर गुजराती लिखावट के "ळ" के स्थान पर किया गया "ल" का मुद्रण सुधार कर पढ़ें एवं अनावश्यक अनुस्वार (.) के टाइपों को भी सुधारने की कृपा करें।



कृपया इस पुस्तक की आशातना न करें।

श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, हम्पी प्रकाशित :-

यो० यु० श्री. सहजानंदघनजी लिखित-सम्पादित साहित्य

- श्रीमद राजचन्द्र : तत्त्वविज्ञान
- उपास्यपदे उपादेयता
- सहजानंदघन पत्र-सुधा
- श्री भक्ति-कर्त्तव्य
- अनुभूति की आवाज़
- सहजानन्द विलास
- सहजानंद सुधा : पदावली
- आनंदघन चौवीशी सार्थ टीका

वर्धमान भारती, बेंगलोर-५६० ००८ प्रस्तुत :-

श्रीमद् राजचंद्रजी एवं यो० यु० श्री. सहजानंदघनजी सम्बन्धित साहित्य

- श्री आत्मसिद्धि शास्त्र (हिन्दी अनुवाद सह)
- दक्षिणापथ की साधनायात्रा (हिन्दी) मुद्रणाधीन
- दक्षिणापथ नी साधनायात्रा (गुजराती) मुद्रणाधीन
- परमगुरु प्रवचन (हिन्दी-गुजराती) मुद्रणाधीन
- Mystic Master Yogindra Yugapradhan Sri Sahajanandaghanji (English) Under Prep.
- अनन्त की अनुगूंज (आत्मखोज के गीत)
- विदेशों में जैन धर्म प्रभावना (मुद्रणाधीन)
- Jainism Abroad (Under Publication)

रिकार्ड एवं कैसॅट

- आत्मसिद्धि-अपूर्व अवसर
- परमगुरु पद
- राजपद-राजभक्तिपद
- सहजानन्द पद
- परमगुरु प्रवचन मंजुषा इ. लगभग ७२ कैसॅट एवं रिकार्ड।